Covid-19 Pandemic: A Third Eye

(Hindi Translation)

Dr Amitav Banerjee, MD, Epidemiologist, Ex-Indian Armed Forces

प्रस्तावना

इन कॉलम्स की उत्पत्ति का संक्षिप्त विवरण सुयोग्य है। सशस्त्र बल में एक गतिशील और समृद्ध पेशेवर करियर के बाद, जिसके दौरान मैंने देशभर में विभिन्न प्रकार की भौगोलिक परिस्थितियों में संचारी रोगों के प्रकोप की जांच करने वाले एक फील्ड एपिडेमियोलॉजिस्ट के रूप में काम किया, जिसमें जनजातीय क्षेत्रों को भी शामिल किया गया। इसके बाद, मैंने एक शांत जीवन की दिशा में अपने आपको अवतरित करने का निर्णय लिया। इस उद्देश्य के लिए, मैंने सशस्त्र बल से समय से पहले सेवानिवृत्ति ले और एक मेडिकल स्कूल में शिक्षण स्थान की स्वीकृति दी। यह परिवर्तन एक अधिक शांत जीवन का वादा करता था, लेकिन यह मेरे व्याख्यानों में उत्साही युवा मनों को भी शांत कर देता था, जो अक्सर उनकी ध्यान केंद्रित क्षमता से अधिक व्याख्यानों में बैठे रहते थे।

मैं दूसरे सेवानिवृत्ति की तैयारी कर रहा था, थकी हुई हड्डियों को आराम देने की उत्सुकता से भरा हुआ, एक वैश्विक जागरूकता ने हमारी योजनाओं को बाधित कर दिया। मेरे छात्र और मैं, विश्व के भीतर हो रहे महामारी और इसके वैश्विक प्रतिक्रियाओं का मॉनिटर करते हुए, हमें नींद से जागरूक कर दिया गया। वायरस द्वारा जो अव्यवस्था और अराजकता फैलाई गई, इसे नियंत्रित करने की प्रतिक्रियाओं से बढ़ी गई, वह स्वास्थ्य सेवाओं के इतिहास में अभूतपूर्व थी।

मेरे छात्रों और सहयोगियों के साथ अनौपचारिक चर्चाओं ने एक नए वायरस के प्रभाव के कुछ रोचक पैटर्न सामने लाए। मैंने अपने छात्रों को वैश्विक महामारी पर विश्वसनीय डेटा का तालिकात्मक काम और उसे अलग-अलग देशों के ओवरवेट अनुपात और मध्यान आयु के संबंध में यौगिक करने के उबाऊ काम दिये। जो शुरुआत में एक दारून काम के रूप में था, जल्द ही हमें उत्साह मिला जब हमने एक पैटर्न का पता लगाया जो सुझाव देता था कि महामारी को अधिकांश तरह से विभिन्न महाद्वीपों की जनसांख्यिकी और मोटापा प्रोफाइलों ने चलाया था बल्कि किसी भी नियंत्रण उपाय से जो अधिकांशतः कठिनाईपूर्ण और हाल के सार्वजनिक स्वास्थ्य इतिहास में अभूतपूर्व थे।

ये ब्रेनस्टॉर्मिंग सेशन हमारे संस्थान की सीमाओं से परे चले गए। अक्सर हमें "व्हाट्सएप यूनिवर्सिटी" से भी प्रेरणा मिलती थी। विचारों की घिसाई जो कि फ़ील्ड एपीडेमियोलॉजिस्ट के रूप में बिताए गए वर्षों के दौरान एकत्रित अलग-अलग विविध टुकड़ों को ऊपर उठाने वाले विचारों का अभिव्यक्ति उन गठित अनेक टुकड़ों को ऊपर उठाने वाले विचारों के मंथन ने, जो झूठ बोल रहे थे, सभी अस्त-व्यस्त थे, और भूरे पदार्थ में अव्यवस्था में थे, पोटपौरी के इस व्यंजन को परोसने के लिए सामग्री प्रदान की।

ये कॉलम्स नेशनल हेराल्ड में प्रकाशित हुए, जो कि नई दिल्ली से प्रकाशित होता है और फिर मुंबई से भी, अप्रैल से दिसंबर 2021 तक। मेजर जनरल वी के सिन्हा, सेवानिवृत्त, ने मुझे उत्तम सेनगुप्ता, नेशनल हेराल्ड के वरिष्ठ पत्रकार, से मिलवाया। उनके संयुक्त मेंत्रीत्व में ये कॉलम्स आकार लेने लगे। टाइम्स ऑफ़ इंडिया के उमेश इसलकर जैसे वरिष्ठ पत्रकारों के साथ मेरे दीर्घकालिक संबंधन ने मुझे लोगों के लिए लेखन की नुआंसियाओं को समझने में मदद की।

जैसे इन कॉलम्स ने महामारी की वर्णनात्मक कहानी सुनानी शुरू की, उन्होंने समान मात्रा में सराहना और आलोचना की, जो इस महामारी के दौरान दृढ़ता से मौजूदा विचारों का विस्तार करती है, बाद के कॉलम्स के लिए ज्ञान प्रदान किया। इसके लिए, मैं विशेष रूप से पद्मश्री डॉ. चंद्रकांत पांडव का धन्यवाद करना चाहता हूं, जिनके प्रेरणादायक शब्दों ने मेरे लेखन को प्रोत्साहित किया। अन्य जिन्होंने मूल्यवान प्रतिक्रियाएँ प्रदान की हैं, उनमें डॉ. संजय दाभाड़े

(जिन्होंने शीर्षक का सुझाव दिया), डॉ. गौतम दास, डॉ. स्थिरिर दासगुप्ता, डॉ. सचिन अत्रे, डॉ. सारिका चतुर्वेदी, डॉ. जैकब पुलियेल, श्री पल्लव मोइत्रा, डॉ. संजय राय, मेजर जनरल वाई के शर्मा, वीएसएम, सेवानिवृत्त, कर्नल एस के पात्रा, सेवानिवृत्त, डॉ. हिमाद्री बल, डॉ. सुधीर जाधव, डॉ. हेतल राठौड़, डॉ. काजल श्रीवास्तव, डॉ. स्वाति घोंगे, डॉ. खेदकर, श्री आशीष बनर्जी, और कई सहकर्मी शामिल हैं। अक्सर कॉलम्स को डॉ. भाग्यश्री पाटिल, डॉ. डीवाई पाटिल विद्यापीठ, पुणे के प्रो-चांसलर से प्रशंसा मिली है। मैंने जीवंत युवा दिमागों से बहुत सी प्रेरणाएँ प्राप्त कीं, विशेष रूप से आर्यन, हर्ष, उज़ैर, दीप्तार्का, अनुश्री और अर्पण से।

भारतीय विज्ञान शिक्षा और अनुसंधान संस्थान, पुणे के डॉ. प्रणय गोएल ने अक्सर अपने विचारशील एकल लाइनर्स के द्वारा पूरे कॉलम्स को प्रेरित किया।

मैं अपनी शोध समूह के योगदान को दर्ज करना चाहता हूं, अर्थात हमारे निवासियों स्वेता, बिस्वजित, कविता, संदीप, वल्लरी, ग्रेशिया, प्रेमा, निरंकुश, दीपू, जॉनसन और अनिल का। उन्होंने इन कॉलम्स के लिए तथ्यात्मक जानकारी का शोध किया और सत्यापित किया।

मैं भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, बॉम्बे के प्रोफेसर भास्करन रमन का आभासकों के लिए जो शब्दों से अधिक कहते हैं, के लिए धन्यवाद देता हूं।

मुझे दो शानदार आई सर्जनों, डॉ. अखिल भारद्वाज और डॉ. जीवन काळे का बहुत ऋणी होना है, जिन्होंने मेरे इस अवधि के दौरान विकसित होने वाले रेटिनल डिटैचमेंट का प्रबंधन किया। समय पर और कुशल शल्य चिकित्सा और उनके मेहनती प्रयासों द्वारा आगे चलकर दृश्य पुनर्स्थापन करने में मेरी मदद की, जिससे मुझे अपनी दृष्टि वापस प्राप्त हुई और मुझे इन कॉलम्स को बिना बहुत विघ्न के जारी रखने में सक्षम बनाया।

कोई भी व्यक्ति घर में एक नायक होने का दावा नहीं कर सकता। मैं अपने करीबी और विस्तारवादी परिवार का आभारी हूं जिन्होंने मेरी एक ही विषय के प्रति अनवरत उत्कटता को सहन किया। मेरी पत्नी, तापोसी, इस पागलपन का सामना करने के लिए श्रेष्ठ प्रशंसा के पात्र हैं। अन्य सदस्यों में अनुभा, अंकन, अरुंधति और सौरव शामिल हैं। मुझे अरुंधति का दर्द महसूस होता है जिन्होंने इस महामारी में अपने पिता को खो दिया।

मुझे यकीन है कि मैंने स्वीकृति नहीं दी है जिन लोगों को मैंने उल्लेख करने में चूक की है - उनसे मेरी क्षमायाचना।

अमिताव बनर्जी,

पुणे

26 जनवरी 2022

विषय-सूची

वायरस की घातकता नहीं, बल्कि अत्यधिक संख्या के कारण दहशत की महामारी …….. 1

सामूहिक टीकाकरण पर दूसरा विचार……7

अपेक्षाकृत युवा भारतीयों की कोविड-19 से मृत्यु का कारण क्या है?..... 13

विकासवादी जीवविज्ञान हमें कोरोनोवायरस म्यूटेंट के बारे में क्या बताता है?.....17

कोविड के मामले में सरकार ने कई बार लक्ष्मण रेखा लाँघी…….21

कोविड-19-आंकड़े बताते हैं कि स्कूलों को फिर से खोलने का मजबूत तर्क है…….26

चालाक कोरोनावायरस के खिलाफ युद्ध की कला……..32

जीने का विज्ञान और कला, कोविड के साथ रहने की…….37

आप उतने ही स्वस्थ हैं जितने स्वयं को समझते हैं……..41

कोविड के लिए संसाधनों और समय को अन्य स्वास्थ्य समस्याओं की अनदेखी के लिए भेदभावपूर्ण नीति…….45

दवा और टी20 क्रिकेट के बीच कोई अंतर नहीं।……49

अब वक्त है धीमी गति से सोचने का…….53

कोविड के खिलाफ जंग: असली जीत किसी की नहीं ……..57

भय और महामारी - मन की स्वतंत्रता की ओर मुक्त होना ……..61

स्वास्थ्य की दृष्टि से: असंभव को पाने की कोशिश की कीमत …….65

सार्वजनिक स्वास्थ्य: कॉर्पोरेट अस्पतालों ने फैमिली फिजिशियन को हाशिये पर ला दिया, लेकिन सफलता के लिए ग्लैमर ही काफी नहीं होता ……..69

सैन्य नेतृत्व से चिकित्सा जगत के नेताओं के लिए सीख….73

रहस्यमय "'बुखार"' कोविड से बड़ी चुनौती……..77

अगली महामारी के लिए तैयारी: क्रिकेट से सीखें।……82

सार्वजनिक स्वास्थ्य: डॉक्टरों को फार्मा और टेक कंपनियों के खिलाफ हार…… 86

कोविड-19 महामारी के वैश्विक प्रतिक्रिया अनौपचारिक रही है; जटिल मुद्दों के लिए कई सोचने की टोपियां चाहिए…….90

मास्क की प्रभावकारिता पर विरोधाभासी दावे…….. 96

यदि ओमिक्रॉन दूसरा नया गेंद है, तो संभावना है कि यह ज्यादा नुकसान नहीं पहुंचाएगा क्योंकि पिच धीमी हो चुकी है…….. 100

कोविड-19 चेस खेल: क्या हम बोर्ड पर सभी टुकड़े और उनके संयोजनों को देख रहे हैं? ……..103

वायरस की घातकता नहीं, बल्कि अत्यधिक संख्या के कारण दहशत की महामारी

राजनीति और वाणिज्य विज्ञान पर जीत हो सकती है। भारत के पास दशकों से क्षय रोग के लिए एक टीका है, लेकिन भारतीय जनसंख्या पर इसका कोई प्रभाव नहीं है।

भयानक महामारी जैसे दहशत का सामना करने के लिए हमें मध्यकालीन युग की याद दिलाती है। जल्दबाजी में लिए गए निर्णय ने नियंत्रण का भ्रम दिया और इससे समाज को खंडित करने वाले और दीर्घकालिक आर्थिक प्रभाव होने का खतरा बढ़ गया है।

दुनिया इस मुश्किल में कैसे पहुंची? जैसे ही महामारी वुहान, हुबेई जिला, चीन से उत्पन्न हुई, यह देश इस मैराथन में पेससेटर बन गया। अधिकांश देशों के लिए दुश्मन होने के कारण चीन ने जो भी कठोर कदम उठाए, उसकी पश्चिमी मीडिया और यहां तक कि विश्व स्वास्थ्य संगठन डब्लू एच ओ ने भी कड़ी आलोचना की। डब्लू एच ओ के प्रतिनिधि ने टिप्पणी की कि चीन के हुबेई जिले के 56 मिलियन लोगों के लॉकडाउन को सार्वजनिक स्वास्थ्य इतिहास में अभूतपूर्व और निश्चित रूप से डब्लू एच ओ द्वारा स्वीकृत नहीं माना गया। पश्चिमी मीडिया और कानूनी विशेषज्ञों ने चीन के कदमों को 'कठोर,' 'तीव्र,' 'अत्यधिक' और 'विवादास्पद' बताया, जो वायरस को नियंत्रित करने के लिए असंभावित है। उन्होंने लॉकडाउन की अंधेरी ओर पर जोर दिया, इसे अवैज्ञानिक और अधिकारवादी बताया।

कौन सोचता था कि चीन ने सफलतापूर्वक अपनी भूमिका को पूरा कर दिया है और एक एक देश, जिसमें लोकतंत्र भी शामिल हैं, चीन को इन कठोर उपायों को लागू करने में पीछे छोड़ देंगे। इस तरह के कठोर उपायों की अंधेरी ओर और अधिकारवाद के संबंध में चिंताएं ऐसे कि लगता है कि उन्हें भूल जाना चाहिए। विशेषज्ञों ने इसे 'कर्व को समतल करने' और 'संचार की श्रृंखला को तोड़ने' के लिए समर्थन दिया, जिसमें कुछ टेक्निकल शब्दों का जिक्र किया गया जिन्होंने महामारी के अग्रसर प्रगति के साथ-साथ उठाए गए।

देशों के बीच का मैराथन पहले ही गलत संकेतों के कारण गुम हो गया। महामारी की घातकता का प्रारंभिक दिनों में भविष्यवाणियों में भूलचुक हो गई थी क्योंकि यह अक्सर अस्पताल में भर्ती मामलों से ही गणी गई थी जो कि अधिकांशत: वृद्ध व्यक्तियों को सम्मिलित करती थी। प्रारंभिक दिनों में इटली में घातक मामलों की माध्यिका आयु 80 वर्ष थी। मार्च 2020 में द लैंसेट ने सुझाव दिया कि, मामले की मौत दर 20% तक हो सकती है। सीरोसर्वे जैसे आगामी अध्ययनों ने संक्रमण की मौत दर को केवल 0.27% तक तात्कालिक बनाया, क्योंकि अधिकांश संक्रमण लक्षणहीन होते हैं और समुदाय में हल्के मामले केवल जनसंख्या सर्वेक्षण के दौरान एंटीबॉडी स्तरों द्वारा ही पता चलते हैं। हालांकि, पहली छाप कभी भूली नहीं जाती। उच्च मौत दर की पहली छाप आज तक लोगों के बीच भय को उत्पन्न करती है। यह हमारे देश को अभूतपूर्व और अनाकांतिक दूसरे लहर में जिसमें अस्पताल बिस्तरों और ऑक्सीजन की कमी की रिपोर्टों से बढ़ जाती है। वास्तव में, आई सी एम आर द्वारा किए गए राष्ट्रीय स्तर के तीसरे सेरोसर्वे के अनुसार, हमारे देश में संक्रमण की मौत दर का लगभग अनुमानित आँकड़ा 0.05% हो सकता है।

दूसरी लहर में, हमें संख्याओं से अधिकतम विचलित किया गया था और केवल वायरस की मृत्युता से नहीं। महामारी ने हमारी सार्वजनिक स्वास्थ्य बुनियादी ढांचे में दरारों का पर्दाफाश किया और स्वास्थ्य सेवाओं के असमान वितरण को प्रकट किया। बड़े शहरों में हेल्थ सिस्टम का कॉर्पोरेट मॉडल महामारी जैसी सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकालों का सामना करने के लिए तैयार नहीं है। सामान्य समय में भी, स्वास्थ्य सेवाओं के लिए आउट ऑफ पॉकेट खर्च बहुत से गरीब परिवारों को गरीबी रेखा से नीचे धकेल देता है। आपूर्ति और मांग के इस मिसमैच के कारण, हमारे पास एक तीव्र आपातकाल हो गया था, लेकिन सीधे रूप से covid के कारण नहीं। आम आदमी को कई सालों से गरीबी रेखा के नीचे धकेलने वाली उन गरीब और अल्पसंख्यकों की तरह, अपर्याप्त चिकित्सा सेवा की निरापदता का कठिन सामना करना पड़ा।

वैज्ञानिक समुदाय ने भी जल्द ही कहानी खो दी, कभी अन्याय करके और कभी, दुखदर्शी, अनदेखी से। कंप्यूटर सिमुलेशन पर आधारित पूर्वानुमान मॉडल ने जनता को डूम्सडे की भविष्यवाणी की। इन्होंने आश्चर्य और भय उत्पन्न किया। अधिक गंभीर हैं वैज्ञानिक सत्यता के संदेह। 'कोविड-19, राजनीतिकरण, भ्रष्टाचार, और विज्ञान का दमन'

शीर्षक ब्रिटिश मेडिकल जर्नल (बी एम जे) में के अब्बासी द्वारा एक संपादकीय में जिसमें वैज्ञानिकता, या ठीक से कहें तो, महामारी के दौरान वैज्ञानिकता की कमी के बारे में चिंताएं उठाई गई हैं।

इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राजनेताओं और सरकारों द्वारा सार्वजनिक हित में विज्ञान को आश्चर्यचकित किया जा रहा है।शिक्षाविदों, शोधकर्ताओं और वाणिज्यिक लॉबी के हितों के टकराव ने इस मुद्दे को और भी जटिल बना दिया है।

वैज्ञानिक विवाद ने विभाजन का मार्ग दिया, जिसमें कोविड-19 नियंत्रण के मुद्दों पर प्रमुख वैज्ञानिकों के बीच दोनों पक्षों में थे। बहुमत चुप रहे, निर्धारित पेशेवर प्रतिकूलता का भय करते हुए। राजनीति और वाणिज्यिक हित नीति चलाने के लिए विज्ञान की जगह ले लिया। 20 सितंबर 2020 को न्यू इंडियन एक्सप्रेस ने आरएमआई द्वारा कोविड-19 प्रसार का मूल्यांकन करने के लिए आयोजित सीरोसर्वे के महत्वपूर्ण डेटा को राजनीतिक प्रभाव के तहत फायरवॉल किया गया, ऐसी आरोपित। ऐसी रिपोर्टों से वैज्ञानिकों पर जनता का भरोसा खत्म हो जाता है।

BMJ संपादकीय में रिपोर्ट के अनुसार, विकसित देशों में भी राजनीति वैज्ञानिक रिपोर्टों में हस्तक्षेप किया। स्वास्थ्य विभाग के अमेरिकी विभाग के नामांकन के अंतर्गत व्यक्तियों ने कोविड-19 से संबंधित वैज्ञानिक बयानों की समीक्षा और संशोधन की मांग की, जो केंद्रीय रोग नियंत्रण और निवारण द्वारा प्रकाशित की गई थी। यूनाइटेड किंगडम में, सरकारी सलाहकारों ने आपातकालीन वैज्ञानिक सलाहकार समूह (SAGE) के विचारों पर प्रभाव डाला।

इस संकट में, हमें चीन से लॉकडाउन जैसे दमनकारी उपायों को नकल करने के सबसे खराब कम्युनिज्म और पैंडेमिक के प्रगति के साथ बाजारी ताकतें द्वारा कथा को अपहरण करने के साथ कैपिटलिज्म के सबसे खराब स्वरूप का सामना किया। आपॉरचुनिस्ट राजनीतिज्ञ और करियर वैज्ञानिक रास्ते पर चढ़ गए।

एक वैश्विक आपदा में, विश्व के नेताओं, उनके वैज्ञानिक सलाहकारों और करियर वैज्ञानिकों पर बड़ी दबाव होता है।

उन्हें नियंत्रण में होने का अहसास दिलाना पड़ता है और वे अपनी अनिश्चितताओं को छुपाने के लिए सैनिकाई तरीकों का सहारा ले सकते हैं। ऐसे तरीके वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भटक जाते हैं। पैंडेमिक में ऐसी अनिश्चितताएं भरी थीं और एक दुर्भाग्यपूर्ण प्रतिक्रिया का दौर शुरू हो गया था जब संस्थाओं और उनके सलाहकारों को बढ़ते मामलों या असहमति से सामना करना पड़ा।

उस ओर जाने की प्रवृत्ति थी कि लोगों को उचित सावधानियां न निभाने के लिए दोषी ठहराया जाए, जिनमें से अधिकांश जैसे सामाजिक दूरीकरण वैसे देशों में कठिन हैं। एक चुटकुला भी फैल रहा था कि अगर सभी भारतीय सामाजिक दूरी बनाए रखें, तो हम पड़ोसी देशों में पहुंच जाएंगे! और इन गैर-फार्माकोलॉजिकल इंटरवेंशन्स का अधिकांश कंप्यूटर सिमुलेशन पर आधारित था जो मानवों को एक निष्क्रिय इकाई के रूप में मानते हैं और उन्हें सामाजिक प्राणी के रूप में नहीं देखते, जो अपने पर्यावरण से अलग होकर बुद्धिमत्तापूर्ण रूप से नहीं जी सकते। इस प्रकार के प्रयास स्वास्थ्य को अधिक हानि पहुंचाते हैं व्यक्तिगतिक विकारों के रूप में।

बच्चों को जिन्हें स्कूली शिक्षा और सामाजिक विकास में हानि हो रही है, उनके लिए भी संभावित नुकसान था। और बेशक, लोगों ने अपनी आजीविका खो दी, जो जीवन की हानि में परिणत होती है।

वैक्सीन के आगमन ने भी अपने संकटों के सेट को साथ लाया। दुनियाँ के चिकित्सा सहमति का अनुसरण करते हुए लग रहा था कि कोरोना के खिलाफ जीत हासिल की जाएगी, अर्थात रोग का समापन। यह सार्वजनिक स्वास्थ्य इतिहास में अभूतपूर्व है।

वैक्सीनें तेजी से लॉन्च हो गई थीं। जनसंख्या स्तर पर प्रभावकारिता डेटा का पूर्वानुमान करना बहुत जल्दी था। अस्पष्ट प्रभावकारिता पर विश्वास करके जन-टीकाकरण के लिए पूरी तरह से जा रहे थे यह बड़ा होने के लिए एक बड़ा हजार है। हमारे पास दशकों से टीबी के खिलाफ वैक्सीन है जिसका भारतीय जनसंख्या में टीबी को रोकने में शून्य प्रभाव है। इसके अतिरिक्त, यह चिंता है कि जनसंख्या के असंयमित और अधूरे टीकाकरण से म्यूटेंट स्ट्रेन को प्रेरित किया जा सकता है। इन सभी चिंताओं को, जैसे कि नए कोरोनावायरस के बारे में लगभग कुछ भी, और भी विस्तृत अनुसंधान की जरूरत थीं।

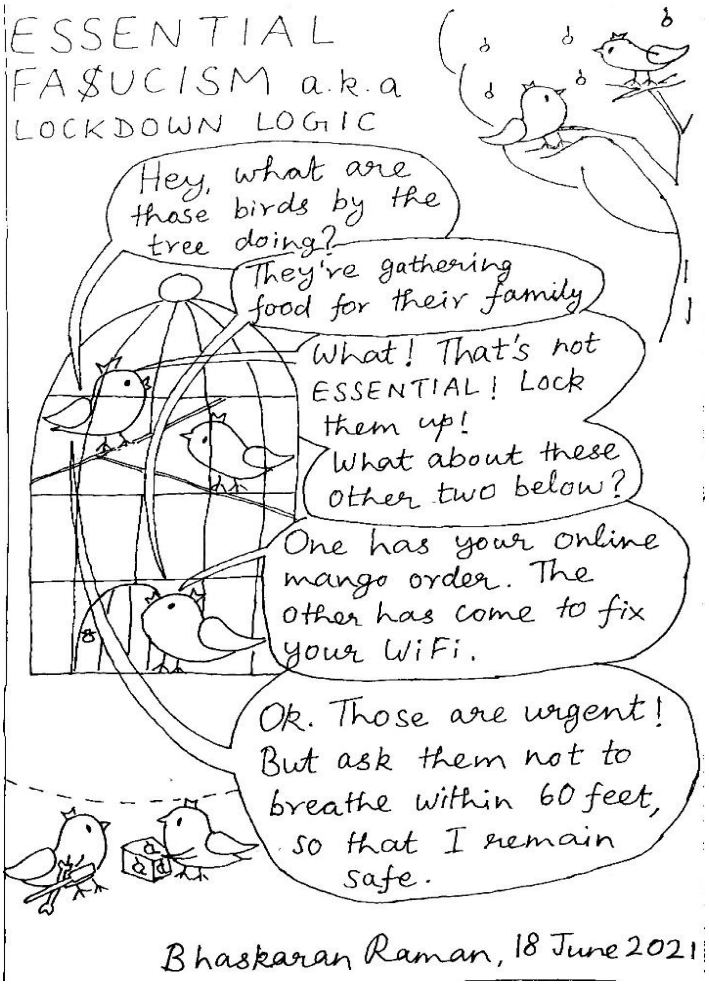

वैज्ञानिक स्वभाव में अलग-अलग विचारों पर तटस्थता और संदेह के साथ विचार करने और उन्हें उचित वैज्ञानिक जांच के अधीन करने की क्षमता होनी चाहिए। दुर्भाग्य से इस तरह के दृष्टिकोण का अभाव था। आम सहमति के विपरीत किसी भी राय को यदि सेंसर नहीं किया गया तो दबा दिया गया।पारदर्शिता के बजाय क्षमता और अस्पष्टता थी। सरकार के सलाहकार पद पर बैठे वैज्ञानिकों में वैज्ञानिक अखंडता के लिए खड़े होने का साहस होना समय की मांग थी।

सामूहिक टीकाकरण पर दूसरा विचार

मॉनिटरिंग, सर्वेलेंस और देशव्यापी सीरोसर्वे के बिना टीकाकरण उपयोगी नहीं है ; यह पुरानी टूटी फूटी रेल पटरियों पर तेज़ गाड़ी चलाने जैसा है। वैक्सीन एक शक्तिशाली हथियार है और इसे रणनीतिक रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए।

इलॉन मस्क ने प्रसिद्धतापूर्ण ढंग से कहा था कि उन्हें और उनके परिवार को कोविड-19 वैक्सीन नहीं लेनी है। ऐसे एक प्रमुख बहु-करोड़पति और उद्यमी के मुंह से यह कथन बहुत से लोगों में वैक्सीन संकोच को बढ़ावा देने की संभावना है। दूसरी ओर, असाधारण दूसरी लहर के साथ ऑक्सीजन और अस्पताल बेडों की कमी की रिपोर्टों ने जनता में उत्कटता को बढ़ाया जिससे वे मानते थे कि व्यापक टीकाकरण पैंडेमिक को रोकेगा। टीकाकरण केंद्रों पर भीड़ को देखकर और पंजीकरण के लिए ऑनलाइन साइट कोविन के बार-बार क्रैश होने से यह स्पष्ट था। इन दोनों अत्यधिक स्थितियों, सार्वजनिक व्यक्तियों द्वारा टीका का स्पष्ट अस्वीकृति एकतरफा और दूसरी ओर, जनता द्वारा टीकाकरण के लिए उत्साह, किसी भी पैंडेमिक के खिलाफ लड़ाई को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकते हैं।

वैक्सीन नए कोरोनावायरस के खिलाफ एक मजबूत और शक्तिशाली हथियार है। आधुनिक सटीकता और जेनोमिक प्रौद्योगिकी का चमत्कार है। और जैसे सभी मजबूत हथियार, यह न तो रोका जाना चाहिए और न ही बेतरतीब इस्तेमाल किया जाना चाहिए, बल्कि इसे रणनीतिक रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए ताकि इससे लाभ उठाया जा सके एक सस्ती तरीके से। पैंडेमिक के खिलाफ युद्ध के सेनापति को इस हथियार, वैक्सीन, के लाभों के साथ-साथ इसके जोखिमों के भी अच्छे से अवगत होना चाहिए।

"इसलिए वे जो हथियार के उपयोग में हानियों के पूरी तरह से अवगत नहीं है, वे हथियार के उपयोग में लाभों के पूरी तरह से अवगत नहीं हो सकते।" सन जू [युद्ध कला]

सन जू, आश्चर्यपूर्वक, लगभग 500 ईसा पूर्व चीन के एक सेनाध्यक्ष थे जिनकी पुस्तक 'युद्ध कला' आज भी सैन्य विचार और रणनीति पर प्रभाव डालती है। शायद उनकी रणनीति को उनकी जन्मभूमि, चीन, में उत्पन्न एक वायरस के खिलाफ लड़ाई में भी लागू किया जा सकता है।

एक अच्छे सेनापति के जैसे, हमें अपनी गोलियाँ, वैक्सीन, को संरक्षित रखना चाहिए था। एक अच्छे सैन्य नेता, अपनी भारी गोलीबारी, तोपखाने, का प्रयोग करने से पहले भूगोल और महामारी डेटा की सर्वेक्षण करता है। इस उपमा का उपयोग करके, हमें प्रारंभिक चरणों में सभी के लिए वैक्सीन खोलने की बजाय अपने लॉजिस्टिक्स और महामारी संबंधी डेटा के आधार पर टीकाकरण को उत्तरदायित्व देना चाहिए था। सभी मुख्य स्थानों पर एक साथ लड़ना स्वास्थ्य कर्मियों और संसाधनों को खाली कर देता है और हमारी बड़ी जनसंख्या के साथ, एक लीकी वैक्सीन के साथ, उस पर प्रभाव होता है।

दुर्भाग्यवश, किसी ने इन भूमि-वास्तुताओं पर ध्यान नहीं दिया, यहां तक कि राष्ट्रीय विशेषज्ञों द्वारा अनकही सलाह के बावजूद। डॉ. एन के अरोड़ा, भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (आईसीएमआर) के ऑपरेशन्स रिसर्च ग्रुप के प्रमुख, ने 12 अप्रैल, 2021 को टाइम्स ऑफ़ इंडिया में 'अभी युवा वयस्कों के लिए वैक्सीनों को खोलना जीवनों के साथ जुआ होगा' शीर्षक से एक राय लेख लिखा। उन्होंने इस रणनीति के पीछे की लॉजिस्टिक चुनौतियों और विज्ञान को समझाने का विवरण दिया। उन्होंने कहा कि अगर हम अनंत संसाधनों वाले एक उतोपिया में रहते तो सभी वयस्कों को टीका लगाना पूरी तरह से समझदारी थी। हालांकि, यह तथ्य था कि हम एक सीमित टीकाकरण सामग्री के साथ एक तेजस्वी महामारी के बीच थे। लक्ष्य था संक्रमण से मृत्यु और अस्पताल में भर्ती होने की संख्या को कम करना।

वर्तमान टीके के द्वारा संचार को रोकने की कोई प्रमाणिक साक्ष्य थी। सामान्य रूप से युवा वयस्कों में संबंधित रोग नहीं होता था और न ही उन्हें अस्पताल में भर्ती होने की जरूरत पड़ती थी या मौत होती थी। इसलिए, युवा वयस्कों को टीकाकरण करना लागतप्रभावी नहीं होगा। जो काम करना चाहिए था, वह यह था कि उस बड़ी हिस्सा की मृत्यु को रोकना जिसमें अधिकांश मौतें ज्यादातर अधिक आयु समूहों में होती थीं। डॉक्टर अरोरा ने मास्क और असंवेदनशील टीकाकरण अभियानों के परिणामस्वरूप म्युटेंट स्ट्रेन के उदभव की संभावना के बारे में भी चेतावनी दी।

एकदम सही था। हालांकि, इस पैंडेमिक में तर्क और विज्ञान को कम ध्यान दिया जा रहा था, इसके बाद के घटनाक्रम से साफ हो रहा है। इस सिफारिश के कुछ हफ्तों के भीतर, कई राज्य सरकारों ने 18 वर्ष से अधिक सभी वयस्कों का

टीकाकरण करने की घोषणा की, कुछ ने तो इसे मुफ्त घोषित भी किया। दरअसल, जनता के लिए बाजार में बजाना। यह एक उदाहरण है जो लोकप्रिय जनमत संग्राहकता का खुलेआम उदाहरण है। इस प्रस्तावित कल्याणकारी उपाय के विरोध को 'टीकाकरण संदेह' के रूप में चिह्नित किया गया था। सरकार के ब्यूरोक्रेट और वैज्ञानिक सलाहकार इस तरह से अपमानित होने से डरते थे, और प्रतिक्रिया का भय कर चुपचाप बने रहने की प्रवृत्ति थी। इस माहौल में समूह सोच प्रबल थी और सभी बैंडवैगन पर सुरक्षित महसूस करते थे। विडंबना की बात यह है कि पैंडेमिक के बाद में, भारत सरकार की राष्ट्रीय तकनीकी सलाहकार समिति (एन टी ए गी आई) के संदेहों को भी डॉक्टर एन के अरोड़ा ने बच्चों के लिए टीकाकरण को अनुमोदित किया! एक अवसरवादी पेशेवर वैज्ञानिक का एक पूर्ण उदाहरण!

दुर्भाग्य से, प्रेसिजन मेडिसिन और जीनोमिक्स जैसी उल्लेखनीय वैज्ञानिक प्रगति ने वैक्सीन विकास को रिकॉर्ड समय में निर्देशित किया, लेकिन इसके प्रोत्साहकों और सार्वजनिक को सामान्य बुद्धिमत्ता की अभाव हो गई। जब बाजारी ताकतें चित्र में उतरीं, स्थिति और भी खराब हो गई। वुडी एलन ने एनी हॉल में कहा है, '"...ये है बुद्धिजीवियों की बात, वे पूरी तरह से उत्कृष्ट हो सकते हैं, लेकिन फिर भी क्या हो रहा है इसका कोई भी अंदाज़ नहीं होता।'"

दूसरी लहर और इसके बाद नवीनतम वेरिएंट, ओमिक्रॉन, के क्रूर गति के कारण हमारे देश में हाहाकार मचा दिया था, इससे स्पष्ट हो गया कि जनसंख्या का व्यापक टीकाकरण हमारे लोगों के बीच प्राकृतिक संक्रमण की गति से कदम मिलाने में नहीं आएगा। और इन सभी संक्रमणों का बहुमुखी असंतुलित या हल्का था, खासकर ओमिक्रॉन के साथ। इस माहौल के खिलाफ, हमारे देश में जो बीमारी थी, उसके लिए युवा और स्वस्थ लोगों के लिए बहुत कम परिणाम थे, इसलिए जनसांख्यिकीय टीकाकरण के लिए भारी स्तर पर व्यस्तता का उपयोग करना व्यर्थ था।

तीसरे राष्ट्रीय स्तरीय सीरोसर्वे के अनुसार, पहली लहर के दौरान लगभग 21% लोगों को पहले ही वायरस से सामना करना पड़ा था। दूसरी लहर के फैलाव की गति और उसके मामूल को देखते हुए, बहुत संभावना है कि टीका उन लोगों तक पहुंचने से पहले और 30-50% की अन्य जनसंख्या संक्रमित हो गई हो। दूसरे लहर के अंत में लगभग 50-70% लोगों ने प्राकृतिक संक्रमण के कारण किसी स्तर की जनसंख्या प्रतिरक्षा प्राप्त की थी, जैसा कि सीरोसर्वे द्वारा प्रकट हुआ। जिन लोगों ने प्राकृतिक संक्रमण से ठीक हो चुके हैं, उन्हें टीका लगाने का कोई वैज्ञानिक तर्क नहीं है, चाहे 'विशेषज्ञ' कुछ भी कहें, वह भ्रमों पर आधारित हैं और वास्तविक दुनिया के आंकड़ों या प्राकृतिक संरक्षण के सिद्धांतों पर नहीं।

मास टीकाकरण से जुड़ी अन्य समस्याएं भी हैं जो जनसंख्या में टीकाकरण से संबंधित हेजिटेंसी का कारण बन सकती हैं। अगर करोड़ों लोग तेजी से टीकाकरण किया जाता है और उसके लिए अल्प संसाधन होते हैं जैसे कि मॉनिटरिंग और सतर्कता जांच के लिए, तो कुछ ऐसे घटनाएँ होने की संभावना है, जिन्हें टीकाकरण के पश्चात अनुकरण के दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम के रूप में समझा जा सकता है, और जो वैक्सीन के साथ संबंधित नहीं हो सकते। हालांकि, आम धारणा इसे वैक्सीन का दोष मानेगी, जिससे टीकाकरण से हेजिटेंसी होगी। यह एक पीछे हटाव होगा जो विकलांगों को टीका देना भी मुश्किल बना देगा।

हार्ड साइंस का अभ्यास और पालन करने के लिए, हमें दूसरी लहर के खत्म होने के बाद जनस्तरीय सीरोसर्वे करना चाहिए था जिससे जनसंख्या स्तर पर प्रतिरक्षा की अनुमानित जानकारी हो सके। हमें उन लोगों को टीका लगाने से रोकना चाहिए था जिनके पास एंटीबॉडीज हैं और जिनके पास पिछले में पॉजिटिव RT-PCR रिपोर्ट थी। यह बहुत सारे वैक्सीन और संसाधन बचा जो वास्तव में वैक्सीन की आवश्यकता थी जैसे कि स्वास्थ्य सेवा कर्मचारी, स्थानीय कर्मचारी, वृद्ध और मोटापा और सह-मोर्बिडिटी वाले लोगों पर ध्यान केंद्रित किया जा सकता था। विज्ञान को जारी रखने के लिए हमें पिछली संक्रमण से ठीक हो चुके बड़े समूहों का अनुसरण करना चाहिए था देखने के लिए कि क्या वे फिर से संक्रमित हो गए। अगर हमें प्राप्त होता कि एक संख्या में संक्रमण की पुनरावृत्ति हुई है जो काफी गंभीर थी, तो हमें अपनी टीकाकरण नीति को विज्ञान के मार्गदर्शन में संशोधित करना चाहिए था।

पैंडेमिक में गति उसी तरह की थी जैसे एक स्प्रिंट की गति में मैराथन दौड़ना। जो कुछ भी डायग्नोस्टिक टेस्ट से लेकर जिस पर कई नीति निर्णय लिए गए, लॉकडाउन, सबसे उपचार योजनाएँ, और वैक्सीन वार्प स्पीड में विकसित हुए, सभी इतिहास में अज्ञात सार्वजनिक स्वास्थ्य के इतिहास में अभूतपूर्व आपातकालीन उपयोग की अनुमति पर हैं।

चिकित्सा समझौता इस मैराथन के आखिरी दौर में पहुंच चुका है, या ऐसा मानता है, आखिरी रेखा का अंत होता है समाप्ति। राजनेता और जनसाधारण दोनों को लगता है कि वैक्सीन कोरोनावायरस को समाप्त कर देगी। लेकिन सार्वजनिक स्वास्थ्य का इतिहास इस आशा का समर्थन नहीं करता। केवल एक बीमारी, स्मालपॉक्स, अपनी वैक्सीन के आगमन के बाद सौ और पचास वर्ष से अधिक समय बाद समाप्त की जा सकी। यह एक बीमारी थी जिसके लिए कोई भी विवरणशील नैदानिक परीक्षण की आवश्यकता नहीं थी, इसमें सबक्लीनिकल और एसिम्प्टोमेटिक संक्रमण नहीं थे, मामले सामान्य लोगों द्वारा पहचाने और अलग किए जा सकते थे, और स्मालपॉक्स वायरस जानवरों को संक्रमित नहीं करता था। इनमें से कोई भी मापदंड कोरोनावायरस के लिए लागू नहीं होता।

इन वास्तविकताओं को ध्यान में रखते हुए, इस मैराथन में एक रुकावट लाने का समय है, और हमें विज्ञान और सामान्य बुद्धिमत्ता पर आधारित रणनीति को संशोधित करने का समय है, और न केवल प्रयोगशाला वैज्ञानिकों की टनल दृष्टिकोणों पर निर्भर करना, चाहे वे कितने ही उत्कृष्ट क्यों न हों, और राजनीतिक आवश्यकताओं पर निर्भर करना।

इस दिशा में, देश के शीर्ष वैज्ञानिकों द्वारा एक खुला पत्र, जो 29 अप्रैल को प्रकाशित हुआ, सरकार से Covid-19 टेस्टिंग पर डेटाबेस तक पहुंच के लिए मांग की। ICMR जैसी सरकारी एजेंसियों द्वारा जुटाए गए डेटा केवल प्रमाण पर आधारित सार्वजनिक स्वास्थ्य नीति को प्रेरित कर सकता है। Covid-19 टेस्ट के लिए नमूना जमा करने वाले हर व्यक्ति की आयु, स्थान, स्वास्थ्य और टीकाकरण स्थिति पर डेटा को सरलता से पहुंचने योग्य बनाना चाहिए। ऐसे डेटा से हमें टीकाकरण के लिए समूहों को प्राथमिकता देने में मदद मिल सकती है, हमें संयुक्त बीमारियों की भूमिका समझने में मदद मिल सकती है, और वैक्सीनों की प्रभावकारिता का मूल्यांकन संभव बना सकती हैं।

अपेक्षाकृत युवा भारतीयों की कोविड-19 से मृत्यु का कारण क्या है?

पक्षधर्म करने के लिए पर्याप्त डेटा और अध्ययन हमारे लिए मजबूत निष्कर्षण निकालने के लिए उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन बहुत से युवा वयस्क मोटे होते हैं और कई उनमें गांवों और शहरों दोनों में डायबिटिक होने के बारे में अनजान होते हैं।

इस महामारी के दूसरे लहर के दौरान सबसे भयानक छाप एक ऐसा था कि इस बार वायरस अधिकतर युवा लोगों पर हमला कर रहा था। युवा रोगियों के संक्रमण में हार जाने या और भी चिंताजनक रूप से, बच्चों में गंभीर समस्याओं की कथन की विविध वर्णनों ने आग को ज्यादा जलाया। इस तरह, चिकित्सा समझौता ने ऐसा पूर्वानुमान किया कि

तीसरी लहर पेडियाट्रिक आयु समूह पर प्रक्षिप्त होगी। यह छाप तब से मजबूत हो गई जब दिन-रात काम करने वाले उचित इलाज़कर्मियों के द्वारा जानकारी दी गई। मीडिया की रिपोर्टों ने जनसंख्या में घातकपन को बढ़ावा दिया।

महामारी का विज्ञान एक रोमांचक और अनूठा विज्ञान है जिसकी तुलना शतरंज से की जा सकती है।। महामारी विज्ञानी समझते हैं पूरे चेस बोर्ड को। चिकित्सक के रूप में, हम सभी क्लिनिकल मेडिसिन से शुरुआत करते हैं और अधिकांश लोग इसी मार्ग पर अग्रसर रहते हैं। कुछ ही ऐसे होते हैं जो महामारी विज्ञान और सार्वजनिक स्वास्थ्य का चुनाव करते हैं, यह क्षेत्र कम चमकीला होता है, कुछ हद तक अमूर्त होता है। महामारी के समय भी, प्रमुख चिकित्सकों से उनकी राय को सामान्यत: जाने-माने लोगों के रूप में माना जाता है।

क्लिनिकल मेडिसिन से एपिडेमियोलॉजी की ओर बदलाव शतरंज के खिलाड़ी का मास्टर्स स्तर की ओर विकसित होने के समान है। महामारियों में, चिकित्सक और एपिडेमियोलॉजिस्ट की भिन्न दृष्टिकोण होती है। कुछ चिकित्सक महामारियों में अपने जीवन के साथ योगदान देते हैं। इस परिणामस्वरूप, उपचार व्यवस्थाएँ परिष्कृत हुईं और मामले में मौत की दर काफी कम हुई। हालांकि, उन्हें जनसंख्या में महामारियों की गतिविधियों को देखने के लिए आदर्श स्थिति में नहीं माना जा सकता।

दूसरी लहर में कोविड-19 से प्रभावित लोगों की आयु समूह के बीच पहली से कोई विशेष अंतर नहीं था। यह एक आधिकारिक ब्रीफिंग में अंतिम अप्रैल 2021 के आसपास डॉ. वी के पॉल, एक बाल चिकित्सक, नीति आयोग के सदस्य और डॉ. बैराम भार्गवा, भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के महानिदेशक ने कहा था। उन्होंने विस्तार से बताया कि दूसरी लहर में 30 वर्ष से कम उम्र के 32% मामले थे, जबकि पहली में 31% थे। दूसरी लहर में मरीजों की औसत उम्र 49 वर्ष थी जबकि पिछले साल 50 वर्ष थी। पहली लहर में 0 से 19 वर्ष के बीच 4.2% मरीज थे, जबकि दूसरी में यह 5.8% था; जबकि 20-40 वर्ष के ब्रैकेट में दूसरी में मामले का 25% शुमार हुआ था जबकि पहली में 23% था।

पैनिक क्यों, इसमें एक अमेचुअरिश एडिटोरियल भी लैंसेट में शामिल है? दूसरी लहर की गति, तेजी और उछाल ने सभी को आश्चर्य में डाल दिया। चलिए हम अपनी ताकतों और कमजोरियों का विश्लेषण करें, जो हमें यह पूर्वानुमान करने में मदद करेगा कि हम भविष्य की महामारियों में कैसे कामयाब होंगे।

जैसे कि अधिकांश एशियाई और अफ्रीकी देशों में है, हमारे पास जनसांख्यिकीय लाभ है। हमारे पास युवा वयस्कों और बच्चों का एक व्यापक आधार है जो हल्के से मध्यम महामारियों के पूरे प्रभाव को कम करने में मदद कर सकता है। पैंडेमिक के दौरान स्कूलों को बंद नहीं करने वाला स्वीडन इस प्रस्ताव का समर्थन करता है। बावजूद इसके कि स्कूल पूरे समय खुले रहे, स्वीडिश स्कूली बच्चों या उनके स्कूल के कर्मचारियों में कोई अतिरिक्त रोगाणुता या मृत्यु नहीं थी।

बॉडी मास इंडेक्स (बीएमआई) के आधार पर अधिक वजन की व्यापकता का अंकलन करने से पता चलता है कि एशियाई और अफ्रीकी देशों में लगभग 20% की तुलना में पश्चिमी देशों में अधिक वजन की व्यापकता लगभग 60% है। उम्र और मोटापे के कारण कोरोना वायरस से मृत्यु दर विकसित दुनिया में विकसित देशों की तुलना में 10 से 20 गुना अधिक है।

इस सवाल के उत्तर में दो बहुलक देश रोचक विविधताओं के साथ संकेत प्रदान करते हैं।

जापान में आयु प्रोफ़ाइल सबसे अधिक है, लेकिन उनका मोटापा प्रोफ़ाइल पश्चिमी देशों की तुलना में एक तिहाई है। उनकी कोविड-19 से मृत्यु दर पश्चिमी देशों की तुलना में लगभग 15 गुना कम थी। जापान में सबसे मजबूत हिस्सा समग्र रूप से अच्छा स्वास्थ्य प्रकट होता है, जैसा कि जनसंख्या के कम बीएमआई से पता चलता है।

दूसरा बहुलक देश ब्राजील था, जिससे भारत के लिए महत्वपूर्ण सीख है। इसकी आयु प्रोफ़ाइल कम थी, लेकिन मोटापा प्रोफ़ाइल पश्चिम की तुलना में समान था। भारत की तरह, यह एक तेजी से विकसित हो रही अर्थव्यवस्था है जिसमें जीवनशैली, शारीरिक गतिविधि और आहार में परिवर्तन हुआ है। ब्राजील में कोविड-19 से मृत्युदर कई पश्चिमी देशों से अधिक था। मोटापा आयु से अधिकतम मौत के प्रमुख कारक साबित हुआ।

क्या आने वाली महामारियाँ युवाओं को प्रभावित करेंगी? ये सवाल ज़रूर चिंता पैदा करता है, भले ही हमारी आबादी दुबली-पतली मानी जाती है।यहाँ परेशानी ये है कि हाल ही में आर्थिक रूप से संपन्न युवा पीढ़ी एक अस्वस्थ जीवनशैली अपना रही है। फास्ट फूड, शराब, और सिगरेट जैसी चीज़ें आम हो रही हैं, जो व्यायाम की कमी के साथ मिलकर रोग प्रतिरोधक क्षमता को कमज़ोर कर सकती हैं। इसके साथ ही, हमारे आनुवंशिक बनावट में भी दिक्कत है। भारतीयों में मधुमेह और हृदय संबंधी बीमारियों का खतरा ज़्यादा होता है, वो भी पश्चिमी देशों के लोगों के मुकाबले एक-दो दशक पहले ही। यह "दोहरी मार" युवाओं को महामारियों के और भी ज़्यादा संवेदनशील बना सकती है।

आगे का मार्ग क्या है? हमें सार्वजनिक स्वास्थ्य बुनियादी ढांचे को समान रूप से मजबूत करना होगा, और नए समृद्धि के बीच जीवनशैली परिवर्तनों का सामना करना होगा। हमारे क्षेत्रीय प्रयोग क्षेत्रों में कई अध्ययनों ने यह युवाओं और युवा वयस्कों के बीच यह आरंभिक प्रवृत्तियों को सामने लाया।

चिंता की बात है कि शोध में हमने पाया है कि युवा पीढ़ी में विटामिन डी की कमी पाए जाने की संभावना उनकी तुलना में चार गुना अधिक है जो उनसे उम्र में बड़े हैं। मधुमेह ग्रामीण और शहरी आबादी में काफी आम है, और 35 से 45 साल के आयु वर्ग में आधे से अधिक युवा मधुमेह रोगियों को अपनी बीमारी के बारे में जानकारी तक नहीं है। गैर-संक्रामक रोगों के जोखिम कारक शहरी और ग्रामीण दोनों तरह के युवाओं और युवा वयस्कों में पाए गए।

बचपन में कुपोषण अब भी काफी अधिक है, जैसा कि हमारे पोस्टग्रेजुएट्स और फैकल्टी द्वारा की गई अध्ययनों में उजागर हुआ है।

रोज़ाना लगभग 2000 बच्चे, जो अभी पाँच साल से भी कम उम्र के हैं, बचाव योग्य बीमारियों के कारण दुनिया छोड़ देते हैं. ये सब तब हो रहा है, जब हमारे देश में बाल कुपोषण (बाल माल पोषण) पहले से ही एक बड़ी समस्या है। महामारी के चलते अगर रोज़गार छूटे और समुदाय स्तर पर चलने वाले बाल पोषण कार्यक्रम बाधित हों, तो इसका सीधा असर बच्चों के पोषण पर पड़ेगा। कुपोषण की वजह से बच्चों की मौतों में भी इजाफा हो सकता है। वैसे तो सामान्य पोषण वाले बच्चों के लिए महामारी का खतरा ज़्यादा न हो, मगर कुपोषित बच्चों के लिए ये जानलेवा साबित हो सकती है।

यदि हम इन समस्याओं का समाधान नहीं करते हैं, तो हमें भविष्य की महामारियों का सामना करना पड़ सकता है, जिसमें युवा और बच्चे प्रमुख भागीदार होंगे, वैक्सीनेशन की कमी के कारण नहीं, जैसा कि वर्तमान में अप्रोफेशनल समरस सुझाव से लगता है, बल्कि संशोधनीय जोखिम कारकों का समाधान नहीं करने के परिणामस्वरूप।

अगर हम शतरंज के नौसिखिए खिलाड़ी की तरह सिर्फ़ रानी, यानी वैक्सीन, पर ही ध्यान दें, तो मुमकिन है कि हम रानी तो जीत लें, लेकिन पूरा खेल हार जाएं।

विकासवादी जीवविज्ञान हमें कोरोनोवायरस म्यूटेंट के बारे में क्या बताता है?

ज्यादातर म्यूटेशन, यानी विषाणुओं में होने वाले बदलाव, न तो उनकी ताकत बढ़ाते हैं और न ही फैलने की रफ्तार बदलते हैं। असल में, ज़्यादा खतरनाक बनने वाले विषाणु अपने मेज़बान के साथ ही मिट जाते हैं। वही विषाणु टिक पाते हैं जो इतने खतरनाक न हों।

इसी बात को गलत समझाते हुए, एक भारतीय राज्य के पूर्व मुख्यमंत्री जी ने कह दिया, "कोरोना वायरस को भी जीने का अधिकार है!" बस, फिर क्या था, सोशल मीडिया पर उनकी खूब खिल्ली उड़ी।

डेविड डॉयच अपनी उत्तेजक पुस्तक, "द बिगिनिंग ऑफ इन्फिनिटी," में कहते हैं कि जब हम व्याख्याएँ खोजते हैं, तो हम मानवकेन्द्रितता की ओर झुक जाते हैं, चीजों को मानवीय दृष्टिकोण से स्पष्ट करते हुए। इसे संतुलित करने के लिए, उसका विरोधी अंत्रवृत्तात्मकता को 'मीडिओक्रिटी का सिद्धांत' के द्वारा प्रतिष्ठापित किया गया है, जो मानता है कि ब्रह्मांड के योजना में मानवों के बारे में कुछ महत्वपूर्ण नहीं है।

यहां ये कहना मुश्किल है कि पूर्व मुख्यमंत्री जी ने ये किताब पढ़ी थी या नहीं। राजनेताओं के पास पढ़ने का वक्त कहां होता है! मगर ये भी सच है कि उनकी बात में कुछ दम तो था, भले ही वो अनजाने में ही सही।

मानवकेंद्रितता से प्रेरित महामारी लंबी हो गई। वह वादा जो स्प्रिंट की तरह था, वह मैराथन बन गया। क्या हमने सही दिशा ली? और स्प्रिंट मोड में होने के कारण, क्या हम इस क्रॉस कंट्री रेस में गलत दिशा में बहुत आगे चले गए? क्या वायरस का पीछा करना हर हाल में विश्व सरकारों और उनके वैज्ञानिक सलाहकारों के लिए एक प्रतिष्ठा का मुद्दा बन गया, जो मानवकेंद्रितता का एक अतिरेकी रूप है?

लॉकडाउन, शारीरिक दूरी, और स्कूलों के बंद होने की रणनीति, जो एक आवर्ती रणनीति बन गई, एक अमेरिकी वैज्ञानिक की बेटी, जो हाई स्कूल की छात्रा थी, द्वारा इंफ्लुएंजा महामारी के नियंत्रण पर एक कंप्यूटर सिमुलेशन परियोजना पर आधारित थी। इसी तरह, हैम्स्टर्स पर मास्क के लाभ पर एक अध्ययन ने मास्क जनादेश का मार्गदर्शन किया। इसके बाद, मास्क पर एक डेनिश यादृच्छिक परीक्षण और बाद में बांग्लादेश से एक अध्ययन अनिर्णायक रहा।

यहां गौर करने वाली बात ये है कि मास्क को लेकर नियम लगातार सख्त होते गए। पहले एक मास्क, फिर दो मास्क - मानो मास्क पहनने का ये सिलसिला कोई ओलिंपिक स्पर्धा बन गया हो!

महामारी में एक ही थीम थी '"भय ही चाबी है।"' लगभग सभी देशों के नागरिक, विशेषकर प्रमुख लोकतंत्रों के, निरंतरता से उन्हें उनके मौलिक अधिकारों से वंचित करने वाली उपायों का पालन किया, जिसे आत्मसात की सामान्य घातक के संयोजक के द्वारा चलाया गया। दहशत के महामारी के एक प्रमुख योगदानकर्ता थे उन कठोर उपायों में जो सार्वजनिक स्वास्थ्य के इतिहास में कोई पूर्वावधि नहीं थीं।

केवल एक बीमारी के मामलों और मौतों की संख्या को गलत संदर्भ में पेश करना, लोगों में आसानी से दहशत पैदा कर सकता है। ऐसा किसी भी बीमारी के लिए पहले कभी नहीं किया गया। इस वजह से समाज में एक तरह से सामूहिक जुनूनी बाध्यकारी विकार की स्थिति बन गई, जहां हर चीज उस नई बीमारी के इर्द-गिर्द घूमने लगी। उस अज्ञात बीमारी से जुड़ी हर चीज को ज़रूरत से ज़्यादा बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया जाने लगा। शुरुआती दिनों में सतहों से संक्रमण का खतरा बताया गया, जिसे बाद में गनीमत है, खारिज कर दिया गया। बाद में खबरें आईं कि हवा में मौजूद छोटे कण या न्यूक्लिए दस मीटर तक जा सकते हैं। दहशत का एक और कारण। आसानी से इस बात को नजरअंदाज कर दिया गया कि हमारे आसपास इस दायरे में लाखों सूक्ष्मजीव हो सकते हैं, जो हमारे शरीर के अंदर मौजूद अरबों के अलावा हैं। जनता को भड़काने का ताजा हथकंडा है मीडिया में नॉवल कोरोनावायरस के

उत्परिवर्तित रूपों की रिपोर्ट्स। आम धारणा यह होगी कि म्यूटेशन राक्षस पैदा करते हैं। विकासवादी जीव विज्ञान हमें कुछ और ही बताता है।

पूर्व मुख्यमंत्री जी के उस "फॉक्स-पॉ" वाले बयान पर वापस आते हैं, तो गौर करने वाली बात ये है कि वायरस को भी जीने का अधिकार है। ये हमें चाहे अच्छा लगे या बुरा, प्रकृति उन्हें भी जीने का मौका देती है। वो अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए प्रकृति के बताए अनुकूलन के रास्ते पर चलते हैं - डार्विन का सिद्धांत यही कहता है।

ये अनुकूलन म्यूटेशन के जरिए होते हैं, जो कि कोई नई बात नहीं है, बल्कि प्राकृतिक घटना है। ये म्यूटेशन वायरस की नकल बनाने में होने वाली गलतियों की वजह से और कभी-कभी बाहरी दबाव के कारण भी हो सकते हैं। सफल परजीवीवाद के सिद्धांतों के अनुसार, ये अनुकूलन वायरस और इंसानों दोनों के लिए फायदेमंद होता है। वायरस के अस्तित्व के लिए जो म्यूटेशन सबसे ज्यादा कारगर साबित होते हैं, वही फैलते हैं, और बाकी प्राकृतिक चयन की वजह से खत्म हो जाते हैं।

जहरीले या ज़्यादा खतरनाक स्ट्रेन दूर तक नहीं फैल पाते। मेज़बान के मर जाने से वे वायरस भी खत्म हो जाते हैं, ये एक तरह से बंद गली जैसा संक्रमण होता है। कम खतरनाक जो मारते नहीं हैं, बस बीमारी के लक्षण देते हैं, वो भी धीरे-धीरे खत्म हो जाते हैं, क्योंकि लोग खुद को अलग रखते हैं।

म्यूटेंट स्ट्रेन, जो जीवित रहेगा और आगे बढ़ेगा, वे कम जानलेवा स्ट्रेन होंगे जो मेज़बान को नहीं मारते, बहुत हल्के लक्षण उत्पन्न करते हैं या बिल्कुल नहीं। इस तरह के हल्के वेरिएंट्स से संक्रमित लोग अन्यों के साथ मिलेंगे और व्यापक रूप से संक्रमित करेंगे। उच्च संक्रामकता उच्च जानलेवा नहीं करती। ऐसे स्ट्रेन जनसंख्या में प्रतिरक्षा बढ़ाते हैं और न्यूनतम हानियों के साथ।

म्यूटेशन कैसे होता है? नॉवेल कोरोनावायरस SARS-CoV-2 एक RNA वायरस है, जिसमें लगभग 30,000 बेस पेयर्स ऑफ नाइट्रोजन कम्पाउंड्स हैं, जिनमें से लगभग 3000 से 4000 स्पाइक प्रोटीन में हैं। इन बेस पेयर्स को वायरस के निर्माण ईंटों के रूप में माना जा सकता है। इन निर्माण ईंटों में जोड़ाव, हटाव या क्रम में परिवर्तन म्यूटेशन का कारण बनता है।

म्यूटेशन का क्या महत्व हो सकता है? कई संभावनाएं हैं। ज्यादातर म्यूटेशन विषाणुत्व या संक्रमण पर कोई प्रभाव नहीं डालती हैं। वे आउटब्रेक के पथ का पता लगाने के लिए उंगली प्रिंट के रूप में उपयोग किए जाते हैं। कुछ म्यूटेशन विषाणुत्व कम कर लेंगे लेकिन संक्रामकता अधिक कर लेंगे, प्राकृतिक चयन के कानून द्वारा जीवित रहने और प्रसारण के बेहतर अवसर होंगे। और बहुत ही कम, वे अधिक जानलेवा हो सकते हैं, ऐसे बाहरी उत्पाद भी जैविक रेस में हार जाएंगे।

म्यूटेशन से संबंधित निम्नलिखित चिंताएं हैं। क्या वैक्सीन काम करेगी? क्या प्राकृतिक संक्रमण से पुनर्धारण के बाद प्राप्त प्रतिरक्षा काम करेगी? क्या आरटी-पीसीआर म्यूटेंट वेरिएंट्स को डिटेक्ट करेगा?

प्राकृतिक संक्रमण या टीकाकरण से उत्पन्न एंटीबॉडीज और इम्यून सेल्स कुछ इपिटोप्स के रूप में जाने जाने वाले कुछ निर्माण ईंटों पर कार्रवाई करते हैं। जैसा कि उल्लिखित है, नॉवेल कोरोनावायरस में लगभग 30,000 बेस पेयर्स या नाइट्रोजन कम्पाउंड्स की निर्माण ईंटें हैं। म्यूटेशन के दौरान केवल कुछ निर्माण ईंटों में परिवर्तन होता है। इसलिए प्राकृतिक संक्रमण से या पूरे वायरस से विकसित टीके द्वारा इम्यून बनाने वाली एंटीबॉडीज और इम्यून सेल्स का वायरस के पूरे रूप पर प्रिमेड होने के कारण इन वेरिएंट्स को समाप्त करने की बहुत अच्छी संभावना होती है।

कुछ टीके केवल स्पाइक प्रोटीन या उसमें कुछ निर्माण ईंटों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। इन लक्ष्यों को ईपिटोप्स कहा जाता है, जिनमें से स्पाइक प्रोटीन में 3000-4000 बेस पेयर्स हैं। यदि किसी ईपिटोप में म्यूटेशन स्पाइक प्रोटीन में होता है तो थोड़ी अधिक संभावना है कि एंटीबॉडीज और इम्यून सेल्स म्यूटेटेड ईपिटोप पर खाली चले जाएं। हालांकि, क्योंकि प्रक्रिया में कई ईपिटोप्स शामिल होते हैं, इस प्रकार के टीके भी म्यूटेंट्स के खिलाफ कुछ सुरक्षा प्रदान करेंगे। आरटी-पीसीआर टेस्ट जो कई ईपिटोप्स को लक्ष्य बनाते हैं, उन्हें भी वेरिएंट्स का पता लगाना चाहिए।

यह भी कुछ सांत्वना देने वाला होना चाहिए कि जैविक विज्ञान के सिद्धांतों के कारण, लंबे समय तक जनसंख्या स्तर पर प्रबल होने वाले म्यूटेंट्स कम जानलेवा होंगे। यह सभी महामारियों का तरीका है। समय के साथ वे मौसमी छोटी बीमारियों में बदल जाते हैं। इस अवधारणा को एक प्रसिद्ध हिंदी फिल्म "अग्निपथ" में एक बातचीत से सारांशित किया गया है, "'अपना उसूल कहता है ... जब दुश्मन की उम्र बढ़ जाए तो उससे दोस्ती करलो ... अपनी उम्र बढ़ जाती है।'"

[लेखक का नोट: अनेक तकनीकी अवधारणाओं और शब्दों को बेहतर समझने के लिए सर्वसाधारण के लिए सरलीकृत किया गया है]

कोविड के मामले में सरकार ने कई बार लक्ष्मण रेखा लाँघी

कोविड-19 महामारी की प्रचंड लहरों ने दुनिया भर के देशों को अचानक कठोर कदम उठाने पर मजबूर कर दिया। डर ने लोगों के मन में घर बना लिया, उन्हें आभासी घर में कैद होने के लिए बाध्य कर दिया। इस अराजकता और अव्यवस्था के बीच, न्याय, परोपकार, अहिंसा और स्वायत्तता जैसे सभी नैतिक मूल्यों को धता बता दिया गया।

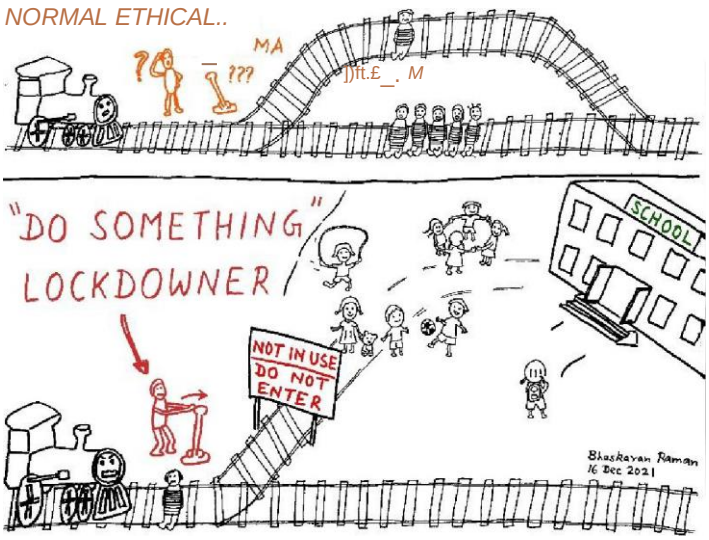

कोविड-19 महामारी ने इस बात को रेखांकित किया है कि उन्नीसवीं सदी में रॉबर्ट कोच और लुई पाश्चर की खोजों के बाद, जब वैज्ञानिक जगत ने "रोगाणु सिद्धांत" की सीमाओं को समझा, तो समाजशास्त्रीय चिकित्सा के कठिन परिश्रम से सीखे गए पाठों को हम भूल चुके हैं। शुरुआती खुशी के बाद, यह समझ आया कि बैक्टीरिया और वायरस के अलावा, संक्रामक रोगों के सामाजिक पहलू भी होते हैं। बीमारियों के पीछे सामाजिक कारण, सामाजिक विकृतियाँ और सामाजिक परिणाम होते हैं। सामाजिक कल्याण का रास्ता नैतिक सीमाओं से होकर गुजरता है, जो किसी भी

दुष्परिणाम से बचाने के लिए सुरक्षा उपाय हैं। इस महामारी में, समानता, परोपकार, अहिंसा और स्वायत्तता जैसे सभी नैतिक सीमाओं को नजरअंदाज कर दिया गया।

सामाजिक न्याय (इक्विटी)

इक्विटी या सामाजिक न्याय का मतलब है कि हर व्यक्ति के हित को बराबर महत्व दिया जाना चाहिए। इसका मतलब ये भी है कि तर्क के अनुसार, बीमारी से ग्रस्त हर व्यक्ति को, चाहे उसे कोई भी बीमारी हो, स्वास्थ्य सेवाओं तक समान और आसान पहुंच होनी चाहिए। हर वह बीमारी जो एक जनस्वास्थ्य समस्या है, उस पर समान ध्यान दिया जाना चाहिए। दुर्भाग्य से, भारत में संचारी रोगों का बोझ बहुत अधिक है और माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याएं असहनीय स्तर पर हैं।

हर साल भारत में पांच साल से कम उम्र के 8 लाख बच्चे बचाव योग्य बीमारियों से मर जाते हैं। भारत में नवजात शिशु के पहले जन्मदिन से पहले मरने का जोखिम 3% है। यह कोविड-19 से संक्रमण से होने वाली मृत्यु दर से कहीं ज्यादा है, जिसे हाल के अनुमानों में 0.1% से भी कम बताया गया है।

उपेक्षित स्थानिक रोगों और बाल मृत्यु दर का ज्यादातर बोझ गरीबों पर ही पड़ता है, जबकि कोविड-19 का खतरा ज्यादा संपन्न, विदेश घूमने वाले मध्यम वर्ग को ज्यादा लगता है। गरीबों की बीमारियों और अमीरों की बीमारियों के बीच एक स्पष्ट विभाजन है। समानता के सिद्धांत को नजरअंदाज कर दिया जाता है।

बहुप्रतीक्षित टीकों का रोलआउट इन असमानताओं को और उजागर करता है। वैश्विक स्तर पर अमीर देशों के पास टीकों की असीमित आपूर्ति थी, जबकि गरीब देश पर्याप्त मात्रा में टीके जुटाने के लिए संघर्ष कर रहे थे। देश के भीतर, टीकों तक पहुंच में शहरी-ग्रामीण विभाजन है। शहरों के लोगों के गांवों में जाकर टीका लगवाने की खबरें आईं, जिससे कि ग्रामीण इलाकों के लोगों को टीका लगवाने से वंचित होना पड़ा।

परोपकार और अहिंसा

परोपकार का नैतिक सिद्धांत कहता है कि किसी भी उपाय से लोगों को लाभ होना चाहिए और जोखिम-लाभ अनुपात स्वीकार्य होना चाहिए। इस संकट के दौरान, लॉकडाउन जनसंख्या स्तर पर किए गए सबसे बड़े हस्तक्षेपों में से एक था। गरीबों के लिए, कोविड-19 से संक्रमित होने से मृत्यु का जोखिम, गरीबी की अन्य बीमारियों से होने वाली मृत्यु के जोखिम से कहीं कम था, जो भारत में स्थानिक हैं। लॉकडाउन ने लोगों को अत्यधिक गरीबी और दुख की ओर धकेल दिया। बच्चों में कुपोषण और बच्चों की मृत्यु दर तेजी से बढ़ी; इसकी भविष्यवाणी करने के लिए अतिरंजित विदेशी विश्वविद्यालयों के किसी फैंसी मॉडल की जरूरत नहीं थी।

अहिंसा का मतलब है कोई हानि न पहुँचाना । यह किसी भी हस्तक्षेप का एक महत्वपूर्ण नैतिक सिद्धांत है। लॉकडाउन में, जहां लगभग कोई लाभ नहीं था, वहीं हाशिए के समाज के लोगों पर सबसे ज्यादा नुकसान डाला गया।

नवीनतम जनगणना के अनुसार, भारत की 6.4 करोड़ से अधिक जनसंख्या झुग्गियों में रहती है। यह लगभग यूके या फ्रांस की आबादी के बराबर है। जो कोई भी भारत की किसी झुग्गी में गया है, वह जानता है कि सामाजिक दूरी बनाए रखना या बार-बार हाथ धोना इन हाशिये के लोगों के लिए संभव नहीं है। उनमें से ज्यादातर लोग कम पानी और हाथ धोने की सुविधाओं के साथ सामुदायिक शौचालय साझा करते हैं। भीड़भाड़ वाली रहने की स्थिति में 24 घंटे बंद रहना श्वसन संक्रमणों के फैलने के लिए आदर्श स्थिति होगी, साथ ही अन्य संचारी रोग भी फैल सकते हैं।

न्यूयॉर्क टाइम्स में 26 मई 2021 के एक लेख में बताया गया है कि कैसे रोग नियंत्रण केंद्र (CDC), अमेरिका ने एक वैज्ञानिक शोधपत्र की गलत व्याख्या कर यह निष्कर्ष निकाला कि बाहर कोविड फैलने का जोखिम 10% है। इस वजह से घर के अंदर रहने और बाहर निकलते समय मास्क पहनने की सलाह दी गई। बाद में, शोधपत्र के लेखकों में से एक ने ट्वीट किया कि सीडीसी द्वारा बताए गए 10% के विपरीत, बाहरी संचरण का जोखिम 0.1% से भी कम था। अमेरिकी सीडीसी वैश्विक स्तर पर कोविड-19 के लिए दिशानिर्देश तय करने वाला अग्रणी संस्थान होने के नाते, इस मूलभूत त्रुटि के कारण दुनिया भर में बाहरी गतिविधियों पर रोक लगा दी गई, और कॉलर ट्यून्स हमें बाहर न निकलने का आग्रह करने लगीं।

एक गलत समझे गए शोध पत्र की सह-लेखिका, नूशीन रजानी ने आगे ट्वीट किया, '... लोगों को प्रकृति का आनंद लेने और सक्रिय रहने के लिए अधिक समय बाहर बिताना चाहिए। बाहर रहना वास्तव में सबसे अच्छा वेंटिलेशन है जिसकी कोई कल्पना कर सकता है, क्योंकि कणों में असीम रूप से पतला करने, फैलने और अंततः गायब होने की जगह होती है।' बाद के एक साक्षात्कार में उन्होंने उल्लेख किया कि बाहर का वातावरण सबसे अच्छा संसाधन है और हमें अधिकांश गतिविधियों को बाहर करने के तरीके खोजने चाहिए। सीडीसी ने घर के अंदर रहने की सिफारिशों को आधार बनाने वाले शोध पत्र के लेखकों में से एक द्वारा इस स्पष्टीकरण के बावजूद, सम्मानित संस्था और वैश्विक सहमति बाहरी गतिविधियों को एक प्रमुख जोखिम के रूप में मानती है।'

यदि सीडीसी ने विज्ञान का सही ढंग से पालन किया होता, तो वह बाहरी गतिविधियों और व्यवसायों को प्रतिबंधित करने की सलाह जारी नहीं रखता। इस **परिणामस्वरूप प्रभाव** ने अन्य देशों को भी इसका अनुसरण करने और मामलों में वृद्धि होने पर सभी बाहरी गतिविधियों और व्यवसायों को बंद करने के लिए प्रेरित किया। इससे विकासशील देशों में विशेष रूप से गंभीर आर्थिक कठिनाइयाँ आईं, जहाँ अधिकांश लोग असंगठित क्षेत्र में बाहर काम करते हैं।

वक्तव्य की विडंबना यह है कि विकासशील देशों में गरीब कामगारों को उनके घरों के अंदर रहने के लिए मजबूर किया गया, जो पहले से ही भीड़भाड़ वाले थे। ऐसे वातावरण में संक्रमण का खतरा ज्यादा था, और मुसीबत और बढ़ाने वाली बात यह है कि उनकी रोजी-रोटी का साधन भी चला गया। इनमें ज्यादातर फेरी लगाने वाले, सड़क किनारे छोटे व्यापारी, खुले में चलने वाले खाने के ठेले मालिक आदि शामिल थे। अगर हमने विज्ञान का सही से पालन किया होता, तो हम न सिर्फ संक्रमण की रोकथाम कर पाते, जो मुख्य रूप से घरों के अंदर होता है, बल्कि उन लोगों की रोजी-रोटी भी बच पाती जो बाहरी काम पर निर्भर करते हैं।

स्वायत्तता या सूचित विकल्प

दुनिया भर में सबसे बड़ा लॉकडाउन, नेक इरादों के साथ, मात्र चार घंटे के नोटिस पर लागू कर दिया गया। अर्थशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों और अन्य को सार्वजनिक मंच पर अपनी चिंताएं व्यक्त करने का अवसर नहीं दिया गया। इतने बड़े पैमाने पर इस कठोर उपाय के फायदे और नुकसान पर कोई सार्वजनिक बहस नहीं हुई। सैकड़ों लोगों की जान और जीविका दांव पर लगी रही और बेरोजगारी, भूख और भुखमरी से होने वाली मौतों की चपेट में

आने के लिए संवेदनशील बनी रही। प्लेग से लड़ने के लिए लागू किया गया औपनिवेशिक काल का महामारी रोग अधिनियम 1897, जिसे लागू कर के राज्य को व्यापक शक्तियां दे दी गईं और कई बुनियादी मानवाधिकारों को निलंबित कर दिया गया। 21वीं सदी की इस बीमारी से निपटने के लिए विज्ञान और तथ्यों के आधार पर रणनीति बनानी चाहिए थी, न कि अधिकांश देशों को पुलिस राज्य में बदल देना चाहिए था।

इन नैतिक भूलों पर विचार-विमर्श करने की आवश्यकता है ताकि भविष्य की महामारियां इतनी भद्दी और असंयमित प्रतिक्रियाओं को जन्म न दें, जहां इलाज बीमारी से भी बदतर हो।

कोविड-19-आंकड़े बताते हैं कि स्कूलों को फिर से खोलने का मजबूत तर्क है

आंकड़े बताते हैं कि स्कूलों को फिर से खोलने के लिए मजबूत तर्क मौजूद हैं। हालांकि दूसरी लहर में वास्तव में अधिक बच्चे संक्रमित हुए, यह ज़्यादातर पूरे परिवार के संक्रमित होने के कारण हुआ। आंकड़े बताते हैं कि कोविड-19 से बच्चों के मरने के मामले बहुत कम थे।

वर्ष २०२१ एक आशावादी नोट पर शुरू हुआ। ऐसा लग रहा था कि भारत में महामारी कम हो गई है। देश पटरी पर लौटने की कोशिश कर रहा था। स्कूलों को फिर से खोलने की योजनाएँ चल रही थीं, तभी अचानक, हम पर एक विकट संकट आ गया। मामले सभी अपेक्षाओं से अधिक तेजी से बढ़े। मई 2021 के पहले हफ्ते के आसपास कुल दैनिक मामलों की संख्या पहली लहर से चार गुना अधिक थी। अस्पताल मरीजों की भरमार से जूझ रहे थे। बिस्तरों और ऑक्सीजन की भारी कमी हो गई थी। इस बार का असर ग्रामीण इलाकों में भी पड़ा, जहां स्वास्थ्य ढांचा अपर्याप्त था। गांवों से कोविड-19 के मरीज इलाज के लिए शहरों आए, जिससे संकट और भी गहरा गया।

शुक्र है, संकट उतनी ही तेजी से कम हुआ जितनी तेजी से बढ़ा था। अप्रत्याशित दूसरी लहर के लिए कई कारण बताए गए, जिनमें अधिक विषाणुता और संप्रेषणीयता वाले उत्परिवर्ती विषाणु शामिल थे। हालांकि म्यूटेशन हुए, यह पूरी तरह से वक्र के समान रूप से तीव्र गिरावट की व्याख्या नहीं करता है।

महामारी में संचरण का घटना-बढ़ना एक प्राकृतिक घटना है, भले ही मनुष्य इसे '" नियंत्रण का भ्रम '" समझ लें। हाल के जनस्वास्थ्य इतिहास में पहली बार, हमने मानवीय हस्तक्षेपों के माध्यम से महामारी के प्रसार को नियंत्रित करने का प्रयास किया। '"नियंत्रण का भ्रम'" की तरह ही, पहली लहर के कम होने पर हम भी '"सफलता के भ्रम'" में फंस गये। अचानक और तेज दूसरी लहर ने हमें इस आत्मसंतुष्टि से झकझोर कर जगा दिया। इससे हमें यह समझना चाहिए कि लॉकडाउन संचरण को रोक नहीं सकते हैं, यह केवल इसे स्थगित कर सकता है, और वह भी ब्याज सहित वापस आने के लिए।

दूसरी लहर में भी, मामले तेजी से कम हुए, शायद इसलिए नहीं कि मनुष्यों ने रोका, बल्कि इसलिए क्योंकि वायरस, संभवतः अधिक संक्रामक प्रकार, ज्यादातर संवेदनशील लोगों से होकर गुजर गया और साथ ही साथ झुंड प्रतिरक्षा का विकास हुआ जिसने रफ्तार कम करने का काम किया। व्यापक भारतीय आबादी में से 10% से भी कम लोगों का टीकाकरण हुआ था और यह अचानक गिरावट का कारण नहीं हो सकता। इसके अलावा, महामारी की ऊंचाई पर, टीकाकरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि प्राकृतिक संक्रमण तेज गति से आबादी में फैलते हैं। गिरावट का श्रेय लॉकडाउन को भी नहीं दिया जा सकता क्योंकि पहली लहर के दौरान सख्त प्रतिबंध लगाने के बाद भी मामले बढ़ते रहे। महाराष्ट्र में सबसे लंबे समय तक और सबसे अधिक लॉकडाउन लगे, साथ ही वहां मामलों की संख्या भी सबसे अधिक थी।

दूसरी लहर कम होती दिख रही थी, लेकिन कई चिंताएं बनी रहीं, चाहे जो भी कारण हों। सबसे बड़ा डर यह था कि तीसरी लहर बच्चों के लिए कठोर होगी। यह इस आधार पर था कि जैसे-जैसे वयस्क आबादी का टीकाकरण होगा, वैसे-वैसे वायरस बच्चों में फैलता रहेगा। इसके अलावा, दूसरी लहर के दौरान अस्पतालों में बच्चों को भर्ती करने के मामले ज्यादा देखे गए।

यह जरूरी नहीं था कि बच्चे इस बार ज्यादा संवेदनशील थे, बल्कि सभी आयु समूहों में मामलों की कुल संख्या बढ़ने के कारण ऐसा लगा। यह समझना लाजमी है कि चिकित्सकों का नजरिया था कि बाद की लहरों में इसका प्रभाव ज्यादातर बच्चों पर पड़ेगा। हालांकि, ठोस आंकड़ों ने इन धारणाओं का समर्थन नहीं किया। दूसरे शब्दों में, भर्ती किए गए मामलों में, 0-18 साल के बच्चों का अनुपात पहली और दूसरी दोनों लहरों में 2-5% के बीच था। वैश्विक स्तर पर आंकड़ों के विश्लेषण से पता चला है कि वयस्कों की तुलना में बच्चों में गंभीर बीमारी और मृत्यु की संभावना न के बराबर थी।

यूके के पब्लिक हेल्थ नामक जर्नल में प्रकाशित एक शोधपत्र में, शोधकर्ताओं ने उन सात देशों के आंकड़ों का विश्लेषण किया, जिन्होंने महामारी का सामना किया था। उन्होंने कोविड-19 से होने वाली बाल मृत्यु दर की गणना की और अध्ययन अवधि के दौरान बच्चों में अन्य कारणों से होने वाली मौतों के साथ तुलना की।

तीन महीने के अध्ययन अवधि के दौरान, 42,846 कोविड-19 के पुष्ट मामलों में से 44 बच्चों की मौत हुई, जिससे मृत्यु दर 0.1% रही। प्रत्येक ज्ञात मामले के लिए, 20-30 मामले अज्ञात रहते हैं, जो 0-18 आयु वर्ग में संक्रमण मृत्यु दर को 0.005% से कम आंका जा सकता है। इसी अवधि में, लेखकों ने पाया कि अन्य कारणों से 13,200 मौतें हुईं, जिनमें से सबसे अधिक 1056 दुर्घटनाओं से, 308 निचले श्वसन रोगों से और 107 इन्फ्लूएंजा से हुईं। बच्चों में कोविड-19 से होने वाली मौतों का कुल मौतों में सिर्फ 0.33% योगदान रहा।

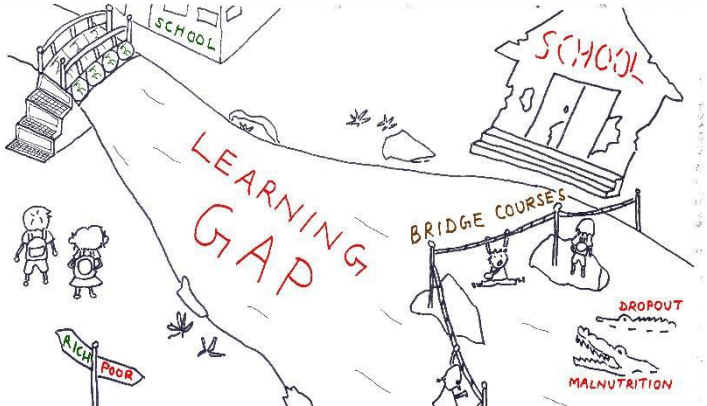

आंकड़ों से पता चला है कि कोविड-19 ने शायद ही कभी बच्चों को मारा। महामारी की ऊंचाई पर भी, बच्चों में 99.67% मौतें कोविड-19 के अलावा अन्य कारणों से हुईं।

स्वीडन के अनुभव ने बच्चों में कोविड-19 की गंभीरता के बारे में अधिक जानकारी प्रदान की। स्वीडन शायद अकेला ऐसा देश था जिसने महामारी के दौरान स्कूलों और पूर्वस्कूलों को खुला रखा। कैरोलिंस्का इंस्टीट्यूट द्वारा किए गए एक अध्ययन को न्यू इंग्लैंड जर्नल ऑफ मेडिसिन में प्रकाशित किया गया है, जिसमें स्वीडिश स्कूली बच्चों पर शोध किया गया जो कोविड-19 से गंभीर रूप से प्रभावित थे। अध्ययन में पाया गया कि गंभीर कोविड -19, जिसे गहन देखभाल इकाई (सांस्कृतिक विश्वविद्यालय) में उपचार की आवश्यकता के रूप में परिभाषित किया गया है, बच्चों में दुर्लभ था, स्कूल में खुले रहने के दौरान भी महामारी थी। अध्ययन के चार महीने की अवधि में 130,000 बच्चों में से केवल 1 का ही इलाज किया गया। कुल 15 बच्चों को भर्ती में भर्ती किया गया, जिसमें 7 को मल्टीसिस्टम इंफ्लेमेटरी सिंड्रोम (MIS-C) था, जो कि COVID-19 से जुड़ा है। चार बच्चों में पहले से ही थी कोई बीमारी। इनमें से किसी भी बच्चे की मृत्यु नहीं हुई और अवशेष में रहने का औसत समय 4 दिन था।

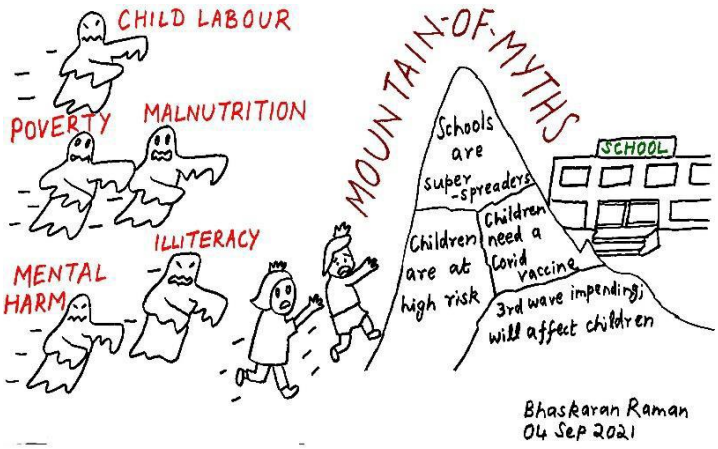

क्या बच्चे, खुद बीमार न पड़ने के बावजूद, सुपर-स्प्रेडर के रूप में कार्य कर सकते हैं और परिवार के बुजुर्ग सदस्यों को संक्रमित कर सकते हैं या सामुदायिक संचरण को बढ़ा सकते हैं? ऐसे सवालों का हल ढूंढना स्कूलों को फिर से खोलने जैसे सार्वजनिक स्वास्थ्य से जुड़े फैसलों को लेने के लिए महत्वपूर्ण था।

समीक्षा-पत्रिका "पीडियाट्रिक्स" में प्रकाशित एक आश्वस्त करने वाला शोध-पत्र जिसका शीर्षक है '"कोविड-19 संचरण और बच्चे: बच्चा दोषी नहीं है'" इस विषय पर उपलब्ध साक्ष्यों का अवलोकन प्रस्तुत करता है। परिवारों के भीतर कोविड-19 संक्रमण के प्रसार की गतिशीलता पर किए गए अध्ययनों से पता चला है कि ज्यादातर मामलों में, बच्चों में घर के वयस्कों के बाद ही लक्षण विकसित हुए। इससे यह संकेत मिलता है कि बच्चे संक्रमण का स्रोत नहीं थे, बल्कि वयस्कों से कोविड-19 ग्रहण करने की अधिक संभावना थी, न कि उन्हें संक्रमित करने की। चीन से भी इसी तरह के निष्कर्ष सामने आए।

क्या स्कूली बच्चों में संक्रमण समुदाय में फैलता है? उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर यह अवलोकन किया गया है कि स्कूलों में संचरण, शुरूआत में जितना डर था, उससे कहीं कम महत्वपूर्ण है। यह इन्फ्लूएंजा से बिल्कुल अलग है, जिसके लिए स्कूली बच्चों में संचरण को सामुदायिक संचरण का एक प्रमुख कारण माना जाता है।

दूसरी लहर एकदम से आकर मानो तूफान ले आई और हमें हिला कर के रख दिया। इस भयावह अनुभव के बाद, यह स्वाभाविक था कि हमें बच्चों को प्रभावित करने वाली तीसरी लहर की आशंका थी। इसी डर के कारण स्कूलों और कॉलेजों को फिर से खोलने में देरी हुई। हालांकि, सभी उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि हम थोड़ी अधिक सावधानी के साथ आगे बढ़ सकते थे और युवा पीढ़ी के लिए लंबे समय तक चलने वाले शैक्षिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक नुकसान को रोकने के लिए स्कूलों को फिर से खोलने पर गंभीरता से विचार कर सकते थे।

चालाक कोरोनावायरस के खिलाफ युद्ध की कला

हमें टीकों का विवेकपूर्ण उपयोग करना चाहिए। एक छोटे, कम जनसंख्या वाले और विकसित देश में जो रणनीति कारगर होती है, वह एक बड़े, घनी आबादी वाले और विकासशील देश में कारगर नहीं हो सकती है। यह लागत प्रभावी भी नहीं हो सकता है।

वायरल संक्रमण सदियों से हमारे साथ हैं। दशकों से डॉक्टर इस बात को मानते आ रहे हैं कि वायरल संक्रमणों के लिए कोई प्रभावी इलाज नहीं है। मरीजों का इलाज उनके लक्षणों के आधार पर किया जाता है। हालाँकि, एंटीबायोटिक दवाओं की खोज के बाद से, कई लोगों की जान बचाई जा सकी है, जो वरना माध्यमिक बैक्टीरिया संक्रमणों के कारण मारे जा सकते थे। आज की महामारी और 1918 के इन्फ्लूएंजा महामारी के बीच अनावश्यक घबराहट पैदा करने के लिए समानताएं खींची जाती हैं। 1918-1919 में फ्लू महामारी ने 50 मिलियन लोगों की जान ले ली, उस समय दुनिया की आबादी 1.8 बिलियन थी, जबकि आज यह 7.8 बिलियन है। ये आंकड़े सामूहिक उन्माद पैदा करने के लिए काफी हैं।

लेकिन, कई कारणों से ये तुलना बिल्कुल गलत है। 1918-1919 का फ्लू महामारी उस समय आया था, जब किसी भी वायरल निमोनिया के सामान्य जटिलता, माध्यमिक बैक्टीरिया संक्रमण के इलाज के लिए कोई एंटीबायोटिक मौजूद नहीं थे। पिछली शताब्दी में कई वैज्ञानिक शोधपत्रों ने इसकी पुष्टि की है।

यह तुलना अनुपयुक्त होने का एक और कारण है। 1918-19 का फ्लू महामारी प्रथम विश्व युद्ध के बाद के समय में आया था, जो बहुत कठिनाइयों और अभावों का दौर था। यह कोई संयोग नहीं है कि महामारियों में से यह महामारी युद्ध के बाद के समय में फैली। लोगों के समग्र स्वास्थ्य पर महान युद्ध के वैश्विक प्रभाव के साथ-साथ एंटीबायोटिक दवाओं की कमी ने इससे जुड़ी तबाही और मौतों के लिए आदर्श स्थिति प्रदान की।

पिछले कुछ दशकों में चिकित्सा के क्षेत्र में हुई प्रगति, खासकर पेनिसिलिन और अन्य एंटीबायोटिक दवाओं की खोज, जो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद व्यापक रूप से उपलब्ध हो गईं, ने असंख्य लोगों की जान बचाई। इन दवाओं ने न सिर्फ बैक्टीरिया जनित रोगों से बल्कि वायरल संक्रमणों के बाद होने वाले माध्यमिक संक्रमणों से भी रक्षा की।

लेकिन, दशकों तक, माध्यमिक बैक्टीरिया संक्रमणों की अनुपस्थिति में भी घातक वायरल रोग havoc मचाते रहे। चेचक मानव जाति के वायरल संक्रमणों के अनुभवों की पीड़ा और राहत का प्रतीक है। चेचक से मृत्यु दर 30% थी और 80% जीवित बचे लोगों के चेहरे पर गड्ढेदार निशान या चेचक के दाग पड़ जाते थे। कुछ लोगों की आंखों की रोशनी भी चली जाती थी। यही चेचक की पीड़ा थी। हालांकि, उपन्यास कोरोनावायरस की तुलना चेचक से करना ठीक नहीं है। यह ऐसा है मानो हिटलर की तुलना गांधी से की जा रही हो। दोनों की गंभीरता और मृत्यु दर में बहुत अंतर है। चेचक कहीं अधिक घातक और विकृत करने वाला रोग था।

1980 में चेचक के उन्मूलन का क्षण सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में एक विजय का प्रतीक था। हालांकि, यह जीत दशकों या वर्षों नहीं बल्कि सदियों के संघर्ष का परिणाम थी। यह सब 1796 में शुरू हुआ, जब एक कुशाग्र पर्यवेक्षक एडवर्ड जेनर ने देखा कि चेचक के विकृत से ठीक होने वाली दूधिया महिलाओं को कभी भी चेचक नहीं होता था। इस परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए, उन्होंने नौ साल के लड़के जेम्स फिप्स की बांह में चेचक के घाव से लिए गए पदार्थ को इनोक्युलेट किया। बाद में, जेनर ने लड़के को चेचक वायरस से अवगत कराया, लेकिन बच्चा कभी भी इस बीमारी से ग्रस्त नहीं हुआ। आज के समय में कोई भी संस्थागत समीक्षा बोर्ड इस तरह के अध्ययन को नैतिक अनुमति नही देगा।

चेचक के टीके की खोज से लेकर उसके उन्मूलन तक का सफर बेहद धीमा था, मानो किसी बीते युग की घोड़े की गाड़ी (टांगा) से यात्रा कर रहे हों। इसे खत्म करने में 200 से भी ज्यादा साल लग गए और साथ ही दुनिया भर में व्यापक टीकाकरण कार्यक्रम चलाना पड़ा। चेचक वैश्विक जन स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण पहली और आज तक एकमात्र ऐसी बीमारी है जिसे पूरी तरह से खत्म कर दिया गया है।

हालांकि एक अत्यंत प्रभावी टीका (जिसके लिए टीकाकरण के बाद मास्क या शारीरिक दूरी बनाए रखने की आवश्यकता नहीं थी) चेचक के उन्मूलन में महत्वपूर्ण था, लेकिन इसके अलावा भी कई कारक थे जिन्होंने इस मानव संकट को खत्म करने में मदद की।

चेचक का पता लगाने के लिए किसी जटिल जांच की आवश्यकता नहीं थी; आम व्यक्ति भी इसकी पहचान कर सकता था। इस रोग में कोई स्पर्शोन्मुख मामले (बिना लक्षणों के वायरस ले जाने वाले) नहीं होते थे जो अनजाने में बीमारी फैला सकें। चेचक का वायरस केवल इंसानों को ही संक्रमित कर सकता था, यह अन्य जानवरों में नहीं फैल सकता था। साथ ही, यह वायरस वातावरण में लंबे समय तक जीवित नहीं रह सकता था। इसका मतलब है कि संक्रमित व्यक्ति या दूषित वस्तुओं के सीधे संपर्क के बिना यह रोग नहीं फैल सकता था।

हालांकि चेचक वायरस अत्यधिक घातक था, यह अपेक्षाकृत सरल था। इसमें उन जटिलताओं का अभाव था जो कई अन्य वायरसों में पाए जाते हैं, जैसे पोलियोवायरस या SARS-CoV-2। ये जटिलताएं छिपे हुए संक्रमणों (असीमटोमैतीक केस) की संख्या को बढ़ा देती हैं। सरलता न तो मनुष्यों को और न ही वायरस को दूर तक ले जाती है। यही बात चेचक वायरस के उन्मूलन में सहायक रही।

नवीन कोरोनावायरस, जिसकी उत्पत्ति चीन में हुई है, सन त्ज़ु की रणनीति का अनुसरण करता प्रतीत होता है। यह वायरस, जिसे चीन के इस योद्धा-दार्शनिक ने 2000 साल पहले लिखी गई "युद्ध की कला" में वर्णित धोखेबाज़ युद्ध तकनीकों का उपयोग करता हुआ प्रतीत होता है। सन त्ज़ु ने युद्ध में धोखे की भूमिका पर जोर दिया था, यह कहते हुए

कि "एक सैन्य अभियान में धोखा शामिल होता है। भले ही आप सक्षम हों, अक्षम प्रतीत होते हैं, प्रभावी होते हुए भी अप्रभावी प्रतीत होते हैं... जब आप पास में हमला करने जा रहे हों, तो ऐसा दिखाएँ जैसे कि आप बहुत दूर हैं..." इस धोखे को अप्रत्याशित रूप से चित्रित किया गया था भारत में दूसरी लहर।

दुनिया भर के देशों ने इस वायरस को मिटाने की पूरी कोशिश की, और यह बिल्कुल सही भी था। अगर ये प्रयास सफल हो जाते, तो इस वायरस का सफाया शुरुआत में ही हो जाता। लेकिन वायरस अपने सभी धोखेबाज़ तरीकों की मदद से, हर गुजरते दिन के साथ, समुदाय में गहराई से जमता गया। हमें धीरे-धीरे लंबे समय तक चलने वाली इस लड़ाई को स्वीकार करना पड़ा।

चेचक वायरस से लेकर कोरोनावायरस तक, हमने एक लंबा सफर तय किया है। टीके, जिन्हें समुदायों में पहुँचाने में सदियों, दशक या साल लग जाते थे, उन्हें अब एक वर्ष के भीतर ही विकसित कर लिया गया है। यह एक अविश्वसनीय और सराहनीय उपलब्धि है। जीनोमिक्स और प्रेसिजन मेडिसिन (लक्षित चिकित्सा) के क्षेत्र में असाधारण प्रगति ने टीका उत्पादन में इस चमत्कार को संभव बनाया है। रिकॉर्ड समय में ऐसा लगा कि हमारे पास SARS-CoV-2 वायरस के खिलाफ एक मजबूत हथियार है।

इस धोखेबाज और मजबूत दुश्मन के खिलाफ बराबरी की लड़ाई लड़ने के लिए, हमें भी सूर्य Tzu की "युद्ध कला" से सीख लेनी चाहिए। "युद्ध कला" में हथियारों के इस्तेमाल के बारे में सावधानी बरतने की बात कही गई है: "इसलिए, जो लोग हथियारों के इस्तेमाल के नुकसानों से पूरी तरह अवगत नहीं होते, वे हथियारों के इस्तेमाल के फायदों से भी पूरी तरह अवगत नहीं हो सकते।" यहाँ पर सूर्य Tzu का मतलब है कि किसी भी हथियार की ताकत और कमजोरियों को समझना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि उसे इस्तेमाल करना। आधुनिक वैज्ञानिकों और चिकित्सकों के लिए इसका क्या अर्थ है? इसका मतलब है कि हमें यह समझना होगा कि नये टीके कितने कारगर हैं, उनकी सीमाएं क्या हैं, और वायरस इन टीकों से बचने के लिए कैसे उत्परिवर्तित हो सकता है। साथ ही, हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि टीके अकेले इस महामारी को खत्म करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकते हैं।

सूर्य तजु की सीख को ध्यान में रखते हुए, हमें अपने "हथियारों" यानी टीकों का विवेकपूर्ण तरीके से इस्तेमाल करना चाहिए था। एक कुशल सेनापति की तरह, हमें पहले युद्धक्षेत्र का जायजा लेना चाहिए था। एक छोटे, कम जनसंख्या वाले और विकसित देश में कारगर रणनीति, एक बड़े, घनी आबादी वाले और विकासशील देश में कारगर नहीं हो सकती है। इतना ही नहीं, यह लागत प्रभावी भी नहीं हो सकता है।

यह पाया गया कि प्राकृतिक रूप से संक्रमित होकर मिली रोग प्रतिरोधक क्षमता, टीकाकरण से मिलने वाली प्रतिरोधक क्षमता के बराबर या उससे बेहतर हो सकती है। घनी आबादी वाले देशों, जैसे भारत में, जहां झुग्गियों, छोटे कमरों और भीड़भाड़ वाले बाजारों में सामाजिक दूरी बनाए रखना मुश्किल है, वहां प्राकृतिक संक्रमण तेजी से फैलता है, खासकर तब, जब तक टीकाकरण अभियान उन तक नहीं पहुंच पाता। भारत में दूसरी लहर का तेजी से फैलना इस बात का उदाहरण है।

वायरल संक्रमणों को समुदाय स्तर पर नियंत्रित करने की कुंजी सामूहिक प्रतिरक्षा है। यह दो तरीकों से प्राप्त की जा सकती है: प्राकृतिक रूप से संक्रमण के धीमे प्रसार से या टीकाकरण के माध्यम से तीव्र गति से। प्राकृतिक सामूहिक प्रतिरक्षा की तुलना बीते युग की धीमी गति वाली घोड़े की गाड़ी (टोंगा) से की जा सकती है, जबकि टीकाकरण से प्राप्त सामूहिक प्रतिरक्षा की तुलना आधुनिक तेज रफ्तार वाली मोटर चालित बस से की जा सकती है।

देश के कुछ हिस्सों से मिले आंकड़ों के अनुसार, दूसरी लहर के बाद बड़ी संख्या में लोगों में सार्स-सीओवी-2 के खिलाफ एंटीबॉडी विकसित हो गई थी। सबसे ज्यादा प्रभावित राज्यों में से एक, गुजरात के अहमदाबाद में, मई 2021 के आखिरी हफ्ते में 70% से अधिक आबादी में एंटीबॉडी पाए गए। यह फरवरी 2021 में पाए गए 28% की तुलना में बहुत तेजी से बढ़ा हुआ आंकड़ा है।

हाल ही में, बॉलीवुड के दिग्गज अभिनेता, दिलीप कुमार खबरों में थे। इससे उनकी 1957 की फिल्म "नया दौर" याद आ गई। यह कहानी एक ऐसे गाँव की है जहाँ घोड़े वाली गाड़ी, टांगा, मुख्य परिवहन साधन है। फिल्म के हीरो का

किरदार एक टोंगा चलाने वाला निभाता है। शहर के व्यापारियों द्वारा गाँव में बसें चलाने की शुरुआत करने से टोंगावालों की रोज़ी-रोटी पर संकट खड़ा हो जाता है। काफी बहस के बाद यह फैसला होता है कि टोंगा और बस के बीच दौड़ होगी, और जो जीतेगा वही गाँव में चलने दिया जाएगा।

आम तौर पर, बस आसानी से टोंगे को पछाड़ देती। लेकिन, फिल्म के चरमोत्कर्ष में टोंगा ही दौड़ जीत जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि गांव के रास्तों पर टोंगा बस से ज्यादा चुस्त और फुर्तीला साबित होता है। घुमावदार रास्तों और गड्ढों में जहां बस को धीमे चलना पड़ता है, वहां टोंगा तेजी से निकल जाता है।

महामारियों में बार-बार सीरोसर्वेक्षण कराना महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। महामारियों के दौरान बार-बार सीरोसर्वेक्षण कराना न केवल भविष्य की लहरों की भविष्यवाणी करने के लिए बल्कि टीकाकरण रणनीति को निर्देशित करने के लिए भी महत्वपूर्ण है। सर्वेक्षण के निष्कर्षों और बड़े पैमाने पर टीकाकरण की व्यवस्था के आधार पर अधिक लक्षित टीकाकरण नीति अपनाकर कम लागत में बेहतर परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, एंटीबॉडी वाले लोगों को छोड़कर केवल संवेदनशील लोगों को ही टीका लगाने से कम लागत में तेजी से सामूहिक प्रतिरक्षा हासिल की जा सकती थी। भारत जैसे घनी आबादी वाले देशों में, प्राकृतिक रूप से प्राप्त सामूहिक प्रतिरक्षा (टोंगा) टीकाकरण (बस) से आगे निकल सकती है।

जीने का विज्ञान और कला, कोविड के साथ रहने की

कोविड से लड़ने का विज्ञान तो शानदार था, पर कला कहाँ गुम हो गई? हालाँकि कोविड से लड़ने के लिए वैज्ञानिक विकास शानदार रहा है, लेकिन रणनीति में कला का अभाव साफ दिखाई देता है। शतरंज की रणनीति से हमें सीख लेनी चाहिए थी। शतरंज में जीत हासिल करना ही सब कुछ नहीं होता, बल्कि बड़े परिदृश्य को देखते हुए यह भी समझना ज़रूरी होता है कि कब एक ड्रॉ (बराबरी का खेल) ही बेहतर विकल्प होता है। आशय यह है कि कोविड के मामले में केवल वैज्ञानिक उपायों पर निर्भर रहना नहीं था। हमें संसाधनों के कुशल प्रबंधन और सामाजिक परिस्थितियों को भी ध्यान में रखकर रणनीति बनानी चाहिए थी।

"आयुर्वेद के जनक" हिप्पोक्रेट्स का ज्ञान - "आर्स लोंगा, वीटा ब्रेविस" ग्रीक में "चिकित्सा के जनक" कहे जाने वाले हिप्पोक्रेट्स के एक उद्धरण का लैटिन अनुवाद है। इस वाक्यांश का अंग्रेजी अनुवाद "कला लंबी है, जीवन छोटा है" होता है। पूरे ग्रीक उद्धरण का अनुवाद कुछ इस प्रकार है: "कला लंबी है, जीवन छोटा है, अवसर क्षणभंगुर हैं, अनुभव जोखिम भरा है और निर्णय लेना कठिन है। महामारी ने इस प्राचीन ज्ञान को हमारे सामने स्पष्ट रूप से रख दिया।"

19वीं और 20वीं सदी में जहाँ वैज्ञानिक प्रगति धीमी गति से हुई, वहीं 21वीं सदी में यह रफ्तार तूफानी हो गई है। कंप्यूटिंग, प्रेसिजन मेडिसिन (लक्षित चिकित्सा), जीनोमिक्स और सूचना विज्ञान इस प्रगति को गति दे रहे हैं।

विज्ञान में तीव्र और उल्लेखनीय प्रगति के साथ ऐसा लगता है कि कला कहीं पीछे छूट गई है। चिकित्सा, जो सदियों से एक कला रही है, अब तेजी से एक नए विज्ञान में बदल रही है। यह नया विज्ञान अपनी शुद्धता के नाम पर लगभग निर्जीव सा होता जा रहा है। कठोर विज्ञान तथ्यात्मक और सीधे तौर पर समझने योग्य होता है, जिससे इसकी क्षमता को अक्सर अतिरंजित कर दिया जाता है। वहीं दूसरी ओर, कला व्यक्तिपरक और सारगर्भित होती है। इसकी सूक्ष्मताओं को समझना कठिन होता है और इसकी क्षमता को अक्सर कम आंका जाता है। कला में सामाजिक विज्ञान, नैतिकता, सहानुभूति और जीवन और मृत्यु दोनों में मानवीय गरिमा के लिए चिंता शामिल है, लेकिन यह सिर्फ इन्हीं तक सीमित नहीं हैं।

महामारी की शुरुआत से लेकर अब तक के घटनाक्रम में, शानदार विज्ञान तो देखने को मिला लेकिन कला (रणनीति और दूरदर्शिता) की कमी स्पष्ट रूप से उजागर हुई है। वायरस की उत्पत्ति को लेकर लैब से अनजाने में फैलने का संदेह जताया जा रहा है। यह संदेह "कार्यक्षमता वृद्धि अनुसंधान" नामक शोध से जुड़ा है। "कार्यक्षमता वृद्धि अनुसंधान" का उद्देश्य स्पष्ट रूप से शोध के लिए प्रकृति से आगे निकलना है। कम से कम कहने के लिए यह जोखिम भरा है। परमाणु ऊर्जा के दुरुपयोग की तरह, नैतिकता और मानवतावाद की सीमाओं के बिना विज्ञान की क्षमता का बेरोक इस्तेमाल भारी नुकसान पहुंचा सकता है। द्वितीय विश्व युद्ध में परमाणु ऊर्जा भटकी और उसके भयावह परिणाम सामने आए। क्या यह महामारी जैविक शक्ति के दुरुपयोग का नतीजा है? आशा है कि जैसे-जैसे स्थिति सामान्य होगी, हमें इसका उत्तर मिल जाएगा।

चिकित्सा की कला कमज़ोर पड़ने का असर महामारी विज्ञान पर भी पड़ा है। महामारी विज्ञान किसी आबादी में बीमारी के प्रसार का अध्ययन करता है, और यह महामारियों के नियंत्रण के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण है। पहले के दिनों में महामारी विज्ञानियों द्वारा डाकिया से भी ज्यादा क्षेत्रीय सर्वेक्षण और घर-घर जाकर सर्वेक्षण किए जाते थे। इससे उन्हें न केवल सीधे तौर पर डेटा इकट्ठा करने में मदद मिलती थी, बल्कि वे आबादी में सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों (सामाजिक महामारी विज्ञान) का भी अध्ययन कर पाते थे, जो बीमारी के प्रसार को काफी हद तक निर्धारित करते हैं। 'शू-लेदर एपीडेमियोलॉजी' के रूप में इस कला को जाना जाता था। इसका एक क्लासिक उदाहरण है जॉन स्नो की जांचें, जो 1854 में लंदन में हुए चोलेरा के प्रकोप की थी। वर्षों के साथ, एपीडेमियोलॉजिस्ट, खासकर वे जो शिक्षाविदों में थे, कम प्रेरित हो गए और 'शू-लेदर एपीडेमियोलॉजी' को 'आर्म-चेयर एपीडेमियोलॉजी' के रूप में स्थानांतरित कर दिया। सामाजिक एपीडेमियोलॉजी को पीछे धकेल दिया गया।

वर्तमान में हम बिग डेटा के युग में हैं। डेटा माइनिंग और गणितीय मॉडल्स कई एपीडेमियोलॉजिकल मुद्दों को समझने में योगदान करते हैं। हालांकि, इसने 'माउस-क्लिक एपीडेमियोलॉजिस्ट्स' की पीढ़ी को उत्पन्न किया है, जो सामाजिक एपीडेमियोलॉजी के पूरी तरह से अनजान हैं। वर्तमान महामारी के प्रति कठोर उपाय, शुद्ध गणितीय मॉडल्स पर आधारित, सामाजिक एपीडेमियोलॉजी की अनदेखी के परिणामों की उदाहरणात्मक है।

माउस-क्लिक एपीडेमियोलॉजी ने बड़ी संख्या में मौतों की पूर्वानुमानित किया और स्कूल बंद करने और शारीरिक दूरी जैसे उत्तीर्ण कठोर उपायों के लिए सबूत प्रस्तुत किया। दूसरा उत्पन्न करने के लिए एक कंप्यूटर परियोजना पर इन्फ्लूएंजा नियंत्रण के लिए एक हाई स्कूल की छात्रा द्वारा किया गया, अजीब है, लेकिन सच है। इस स्कूल परियोजना पर आधारित होकर, संयंत्रित राय के लिए साइंटिस्ट्स ने सुपरकंप्यूटर में कल्पनात्मक डेटा चलाया, जिससे मध्यकालीन युग की स्मृति आता है! इन आउटपुट्स पर आधारित स्ट्रैटेजीज जैसे कि स्कूल बंद करना, शारीरिक दूरी और लॉकडाउन को "'गैर-फार्मास्यूटिकल इंटरवेंशन्स (एनपीआई)'" के नाम से जाना गया।

सामाजिक एपीडेमियोलॉजी में दर्शन की कमी के कारण, मॉडल में मानव को सामाजिक प्राणियों के रूप में नहीं लिया गया। सुसंगत कंप्यूटर परिणाम इस संक्रमण की "संचार की श्रृंखला" को तोड़ देंगे, ऐसा सूचित करते थे। दोनों पूर्वानुमान और एनपीआई मॉडल ने व्यापक रूप से गलत रहे, क्योंकि विश्वभर में उम्मीद से कम मौतें हुईं, और वायरस चीन से चांदनी चौक तक पहुंच गया।

हिप्पोक्रेट्स के समय से चिकित्सा की कला ने हमें सचेत किया है कि "पहले कोई नुकसान न पहुँचाएँ"। इलाज बीमारी से भी ज्यादा खतरनाक नहीं होना चाहिए। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान इस कहावत को भूल गई। शुष्क, यानी केवल आँकड़ों पर आधारित विज्ञान ने इस मूलभूत सिद्धांत की उपेक्षा की है। इस शुष्क विज्ञान के कारण होने वाली

आनुषंगिक क्षतियाँ बहुत अधिक हैं। रोज़गार के नुकसान से गंभीर कुपोषण, संक्रामक रोगों में वृद्धि और अन्य कारणों से होने वाली मौतों में वृद्धि हुई है। कोविड-19 से बचाई गई जिंदगियों के लाभ से कहीं ज्यादा नुकसान हुआ है। कोरोनावायरस के पीछे अंधे होकर हमने बहुत कुछ खो दिया है, मानवीय गरिमा के साथ-साथ मानव जीवन भी।

कोविड-19 के खिलाफ रिकॉर्ड समय में टीके विकसित कर लेना विज्ञान का एक ताजा चमत्कार है। इससे इस बीमारी को जल्द से जल्द खत्म करने की उम्मीद जगी है।

शतरंज के महान खिलाड़ी, गणितज्ञ, दार्शनिक और 27 वर्षों तक विश्व चैंपियन रहे इमानुएल लास्कर का कहना था कि "शतरंज में सबसे कठिन काम जीती हुई बाजी को जीतना है।" वैश्विक चिकित्सा जगत कोविड-19 के पूर्ण उन्मूलन का लक्ष्य लेकर चल पड़ा है, जो इमानुएल लास्कर के कथन के अनुसार, एक जीती हुई बाजी को जीतने जैसा कठिन है। निश्चित रूप से रिकॉर्ड समय में टीका विकसित कर लेना एक सराहनीय उपलब्धि है, मानो शतरंज में जीत का दांव हमारे हाथ आ गया हो। लेकिन, शतरंज की तरह, जीत के दांव से भी ज्यादा महत्वपूर्ण सही चाल चलना होता है।

पूरे विश्व में महामारी अलग-अलग तरीकों से फैली। शतरंज के प्रत्येक खेल में तो वही मोहरे होते हैं, लेकिन हर गेम की स्थिति के अनुसार चालें अलग-अलग चलनी पड़ती हैं। चमत्कारिक विज्ञान की बदौलत हमारे पास अब एक मजबूत निगरानी और निगरानी प्रणाली है, और उपचार प्रोटोकॉल को और भी बेहतर बना लिया गया है। टीके के साथ मिलकर ये सभी चीज़ें वायरस के खिलाफ एक मजबूत हथियार हैं। शोधकर्ताओं, प्रयोगशाला वैज्ञानिकों और चिकित्सकों द्वारा इन उपायों को इकट्ठा करने के प्रयास सराहनीय हैं।

यदि हम इस महत्वपूर्ण मोड़ पर चिकित्सा की कला को भूल जाते हैं, तो हम यह पूरा खेल हार जाएंगे। जहाँ विज्ञान बड़े पैमाने पर टीकाकरण की वकालत करेगा, वहीं कला को बड़ी तस्वीर को देखना चाहिए। हमें जीत के लिए जाना चाहिए या ड्रॉ के लिए? चिकित्सा के इतिहास में इतने कम समय में किसी भी बीमारी के पूर्ण उन्मूलन का कोई उदाहरण नहीं है। शतरंज की तरह, जीती हुई बाजी को जीतना बहुत मुश्किल है। टीकों की प्रभावशीलता को लेकर भी अनिश्चितता बनी हुई है। इन अनिश्चितताओं को देखते हुए, कोविड-19 के साथ रहना सीख लेना और एक ड्रॉ के लिए तैयार रहना अधिक व्यावहारिक होगा। एक बार जब हम सभी उम्र के कमजोर लोगों और बुजुर्गों का टीकाकरण कर लेते हैं, तो भारत में कोविड-19 एक सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या नहीं रह जानी चाहिए।

आप उतने ही स्वस्थ हैं जितने स्वयं को समझते हैं

चिंता, दहशत और रोज़गार का नुकसान - कोविड से इतर बीमारियों की लहर- *कोविड के अलावा अन्य बीमारियों की भी एक लहर चल पड़ना तय था, क्योंकि चिंता, दहशत और रोज़गार के नुकसान का लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ना स्वाभाविक था। कठोर कदम उठाने के बजाय, नीति-निर्माताओं को महामारी के विभिन्न चरणों के अनुसार रणनीति बदलने की आवश्यकता थी।*

फ्रेंच सैद्धांतिक रेने डेकार्ट ने इस धारणा को खारिज कर दिया कि मन और शरीर जुड़े हुए हैं। डेकार्ट्स ने इस विचार को खारिज कर दिया कि मन-शारीरिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है। उनका अनुमान है कि मन एक अज्ञात और पदार्थ से बना हो सकता है, इसलिए यह शरीर को प्रभावित नहीं कर सकता जो ठोस पदार्थ है। गिल्बर्ट राइल ने इसे लिखा और उद्धृत किया शारीरिक मन को " घोस्ट इन द मशीन" (मशीन में भूत) का नाम दिया।

डेकार्ट्स के विभाजन को पश्चिमी चिकित्सा पद्धति ने अपना लिया। एक मशीनी शरीर को ठीक करना एक रहस्यमय "भूत इन द मशीन" से जूझने से कहीं आसान था।

हालाँकि, सदियों से चिकित्सक जानते हैं कि "प्लेसेबो प्रभाव" उपचार प्रक्रिया में सकारात्मक भूमिका निभाता है। प्लेसेबो प्रभाव तब होता है, जब लोगों को (गलत तरीके से) यह विश्वास हो जाता है कि वे एक प्रभावी दवा ले रहे हैं और उनकी तबीयत बेहतर हो जाती है। इसके विपरीत, "नोसेबो प्रभाव" भी होता है, जहाँ किसी बीमारी या उपचार के बारे में नकारात्मक सोच स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है। तो वास्तव में, मन शरीर को प्रभावित करता है।

कहानीकार अक्सर वैज्ञानिक सहमति की सीमाओं से मुक्त होकर ऐसी कहानियां लिख देते हैं, जो भविष्य में सच साबित हो जाती हैं। रेने डेकार्ट्स द्वारा मन-शरीर के जुड़ाव को खारिज करने के दो सौ साल बाद, ओ. हेन्री ने अपनी क्लासिक कहानी "द लास्ट लीफ" में नोसेबो और प्लेसेबो प्रभावों को बखूबी बताया है।

निमोनिया की महामारी की पृष्ठभूमि में लिखी गई यह कहानी मन-शरीर के जुड़ाव को दर्शाती है। निमोनिया के गंभीर दौरे से पीड़ित एक युवती निराशा और आसन्न मृत्यु के भय से ग्रस्त है। उसकी खिड़की के बाहर का नजारा सुनसान और उदास है। वह ईंटों से बने मकान को देखती है, जिस पर एक बूढ़ी आइवी की लता चढ़ी हुई है, जिसकी पत्तियाँ शरद ऋतु में तेजी से गिर रही हैं। वह गिरती हुई पत्तियों को गिनती रहती है। यह उसके शरीर से जीवन के खत्म होने का प्रतीक बन जाता है। गिरते हुए पत्ते उसके लिए एक नकारात्मक संकेत (नोसेबो) की तरह काम करते हैं। वह निष्क्रिय रूप से मौत का इंतजार करती है, यह विश्वास करते हुए कि उसकी मृत्यु आखिरी पत्ते के गिरने के साथ ही हो जाएगी। उसका डॉक्टर भी अब उम्मीद छोड़ देता है। कहानी अब अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है। आखिरी पत्ते गिरने से एक दिन पहले रात भर तेज हवा और भारी बारिश होती है।

उसी समय, उनकी बूढ़े पड़ोसी, जो एक असफल कलाकार थे, को उनकी हालत के बारे में पता चलता है। वह रात के अंधेरे में दीवार पर एक पत्ते को चित्रित कर देता है। यह उसका अब तक का इकलौता कृति साबित होता है। अगले दिन युवती रात भर चली तेज हवा और बारिश के बावजूद भी असली आइवी के आखिरी पत्ते को दीवार पर हरे-भरे रूप में देखती है। यह दृश्य उसे लड़ने और जीने की इच्छाशक्ति प्रदान करता है। चित्रित पत्ता उसके लिए एक सकारात्मक संकेत (प्लेसेबो) की तरह काम करता है। वह धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगती है। लेकिन, दूसरी तरफ, उस बूढ़े कलाकार को, जो रात भर बारिश और हवा में भीगकर पत्ता चित्रित करने गया था, निमोनिया हो जाता है और वह दुर्भाग्य से मर जाता है।

ओ. हेनरी ने भले ही अपनी कहानी "द लास्ट लीफ" में मन-शरीर के जुड़ाव को काल्पनिक रूप से बताया हो, लेकिन हालाँकि अभी सीमित साक्ष्य ही उपलब्ध हैं, फिर भी विज्ञान में मन और शरीर के बीच के संबंध को लेकर कुछ नया उभर कर सामने आ रहा है। कहानी और तथ्य एक दूसरे में मिलते हुए प्रतीत हो रहे हैं।

एंटोनोव्स्की द्वारा विकसित स्वास्थ्य की संभावना का विचार, बीसवीं सदी में, उनकी पुस्तक स्वास्थ्य, तनाव और सामना में वर्णित किया गया है, जिससे जीवन के अनुभव सहयोगी बनाते हैं। यह जीवन को समझने योग्य, सार्थक और संभावनात्मक बनाने में मदद करता है। इससे तनाव का सामना करने में सहायता मिलती है। हाल ही में, मार्टिन सेलिगमैन ने प्रफुल्लित और धीरजन व्यक्तियों के बीच भेद किया। प्रफुल्लित व्यक्तियों को अधिक सकारात्मक भावनाएं अनुभव होती हैं, जबकि धीरजन व्यक्तियों के पास अधिक नकारात्मक भावनाएं होती हैं।

ये प्रक्रियाएँ मानसिक कल्याण को ही नहीं बल्कि शारीरिक स्वास्थ्य पर भी प्रभाव डालती हैं, छोटी समय और लंबी

अवधि दोनों। छोटी अवधि में तनाव कमजोरी को संक्रमणों के खिलाफ़ प्रतिरक्षण कम करता है, जबकि लंबी अवधि में यह हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, अन्य अंताहिक्रिया विकार, औटोइम्यून विकार, त्वचा विकार और मनोरोगों के लिए जोखिम कारक हो सकते हैं।

छात्रों के बीच यह एक सर्वविदित अनुभव है कि परीक्षाओं का अत्यधिक तनाव सर्दी-जुकाम की संभावना बढ़ा देता है। यह प्राकृतिक रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी का संकेत देता है। शोध यह भी बताते हैं कि मानसिक तनाव तीव्र संक्रामक श्वसन संबंधी बीमारियों के खतरे को बढ़ा सकता है।

मानसिक-तंत्रिका-प्रतिरक्षा-विज्ञान के क्षेत्र में अध्ययन, जो रसायनिक हार्मोनों के विमुक्ति के माध्यम से तनावकारी और प्रतिरक्षा के बीच के अंतराक्रियाओं की अन्वेषण करता है, अभी भी विकसित हो रहे हैं। इन्हें दोनों तनाव और प्रतिरक्षा विविध होते हैं और मापन कठिन होता है के कारण कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

समझने में आसान है कि तनावकारी कैसे प्रतिरक्षा और स्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डाल सकते हैं। महामारियों से होने वाले लंबे समय तक डर के परिणामस्वरूप लोगों को अनारोग्यकर भोजन, तंबाकू और शराब की ओर प्रेरित करता है (लॉकडाउन की कमी में दुकानों में शराब की लंबी कतारें देखें)। इस सबके बीच, छोटे समय में प्रतिरक्षा को कम करने के दौरान क्रौर्यकारी रोगों का जोखिम बढ़ जाता है। लोग अपने आजीविका को खोने का दुख झेलते हैं और इससे उनका पोषण हानि होता है जिससे रोग प्रतिरोध कम हो जाता है।

महामारी के दौरान पैदा हुआ दहशत भरा तनाव, चाहे प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष, सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक साबित हुआ है। लंबे समय में इसका प्रभाव मानसिक बीमारी, शराब की लत, मादक द्रव्यों के सेवन, और पुरानी बीमारियों की दर में वृद्धि के रूप में देखा जा सकता है। वहीं अल्पावधि में रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होने के कारण बड़ी संख्या में लोग संक्रामक रोगों की चपेट में आने की आशंका है।

अधिकांश सरकारें महामारी के दौरान लोगों में भय डालने की एक सामान्य रणनीति अपनाई। इस दृष्टिकोण का उपयोग "कोविड संगीतिक व्यवहार" के लिए लोगों को अनुपालन कराने के लिए पितृसत्तात्मक रूप से किया गया। यह दृष्टिकोण महामारी के आरंभिक अनिश्चित चरणों में सुरक्षा की दिशा में गलती से भी दी गई हो सकती है। इससे लोगों में दीर्घकालिक भय और जनसाधारण में महाभ्रम फैला। कई लोगों के लिए प्रमाणित तनाव सामान्य तनाव में बदल दिया गया। ज्यादातर ये उपाय अनुपयुक्त थे और सस्पेंडेड गम, शिक्षा, मनोरंजन और संबंधित चिंताओं के कारण क्रोनिक तनाव ने लोगों के मानसिक, शारीरिक और सामाजिक कल्याण पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। प्राणियों के मॉडल भविष्य की लहरों की भविष्यवाणी कर रहे हैं, साथ ही यह कहना मुश्किल नहीं है कि एक असामान्य वायरस को नियंत्रित करने के लिए अतिव्यापी उपायों के बजाय, संक्रमणवादी मौत दर हमारे देश में लगभग 0.1% है, हमें हुनर के साथ-साथ पुरानी मानसिकता और अन्य गैर-संक्रमक बिल्डरों की एक विकराल लहर का सामना करना।

भगवद गीता की तरह, हमें महामारी के विभिन्न चरणों के अनुसार ढलना चाहिए था। पहला चरण था 'तमस' (अंधकार, विनाश और अराजकता) का, जब नोवल कोरोनावायरस के बारे में कुछ नहीं पता था और अव्यवस्थित कुप्रबंधन के कारण कई मौतें हुईं। फिर आया 'रजस' (जुनून, क्रिया, भ्रम) का चरण, वैज्ञानिकों का जुनून हर कीमत पर वायरस से लड़ने का। यह जुनून कभी-कभी अनुचित कार्यों और विशेषज्ञों के विरोधाभासी संदेशों का कारण बना। इसके बाद, हमें 'सत्त्व' (अच्छाई, रचनात्मक कार्य, सद्भाव) की ओर बढ़ना चाहिए था और वायरस के साथ रहना सीखना चाहिए था। यही रास्ता है वैश्विक दहशत और व्यापक जुनूनी बाध्यकारी विकार से दुनिया को बचाने का।

कोविड के लिए संसाधनों और समय को अन्य स्वास्थ्य समस्याओं की अनदेखी के लिए भेदभावपूर्ण नीति

वैक्सीनों के एकल सेवन से एक राष्ट्र स्वस्थ नहीं बनता। हमें एक बेहतर सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली, सुरक्षित पीने का पानी, पोषण और बहुत कुछ की आवश्यकता है। कोविड-19 पर अधिकांश संसाधनों को भटकाना ठीक नीति नहीं था।

भारत एक तेजी से विकसित हो रही अर्थव्यवस्था है। इसका एक मजबूत मध्यम वर्ग है जिसकी आकांक्षाएं बढ़ रही हैं। यह पूंजीवाद और मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ रहा है। समाजवाद की जंजीरों से मुक्त होकर अर्थव्यवस्था तेज कार की तरह गति कर रही है। हालांकि, अगर सड़कों का रखरखाव खराब है और ट्रैफिक सिग्नल अविश्वसनीय हैं, तो तेज कारें दुर्घटना का कारण बन सकती हैं, कभी-कभी फुटपाथ पर चलने वाले लोगों को टक्कर मार सकती हैं।

पिछले सात दशकों में, भारतीय सड़कों पर वाहनों की संख्या में हर साल 11% की वृद्धि हुई है। दूसरी ओर, सड़क नेटवर्क केवल 4% सालाना ही बढ़ा है - यह एक भारी बेमेल है। हालांकि यह यातायात जाम के लिए जिम्मेदार है, भारतीय सड़कों पर निजी परिवहन में वृद्धि से न तो अमीरों को फायदा हुआ है और न ही गरीबों को। दोनों ही बढ़ते वायु प्रदूषण, यातायात की भीड़ और सड़क यातायात दुर्घटनाओं से पीड़ित हैं, जिनमें भारत में हर दिन 400 से अधिक लोग मारे जाते हैं और 1200 से अधिक लोग घायल होते हैं, जिनमें ज्यादातर युवा होते हैं।

एक युवा व्यक्ति का भारत में सड़क दुर्घटना में मरने का खतरा कोविड-19 से मरने के खतरे से कई गुना अधिक है। यदि ये आंकड़े प्रतिदिन 24 x 7 न्यूज़ चैनल्स और सोशल मीडिया द्वारा दर्शाए जाएं, जिनमें सड़क दुर्घटना के पीड़ितों की भयंकर छवियां हों, तो इससे कितना आतंक पैदा हो सकता है, इसे हम सोच सकते हैं।

देश में सार्वजनिक परिवहन की गुणवत्ता बढ़ाकर ही सड़क समस्याओं का स्थायी समाधान संभव है, जो व्याकुल स्थिति में है। गुस्तावो पेट्रो, बोगोटा के पूर्व मेयर ने यह टिप्पणी की थी, "'एक विकसित देश वहाँ नहीं है जहाँ गरीबों के पास कारें हों। वहाँ वहाँ है जहाँ अमीर लोग सार्वजनिक परिवहन का उपयोग करते हैं।'"

विकासशील मध्यम वर्ग बेहतर जीवन की चाहत में अक्सर अपने स्वास्थ्य की अनदेखी कर लेता है। ज्यादातर लोगों के पास शारीरिक गतिविधियों और घर के बने पौष्टिक भोजन के लिए कम समय होता है। बढ़ती हुई निष्क्रियता और फास्ट फूड के कारण मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग और मोटापा जैसी जीवनशैली से जुड़ी बीमारियाँ हो जाती हैं। मौजूदा महामारी बताती है कि ये जीवनशैली से जुड़ी बीमारियाँ लोगों को कोविड-19 के प्रति भी ज्यादा संवेदनशील बना देती हैं।

तेज रफ्तार की जिंदगी सिर्फ नई कारों की मांग को ही नहीं बढ़ाती, बल्कि हर बीमारी के लिए एक गोली और हर नई वैक्सीन की चाहत भी बढ़ा देती है, भले ही वे वैक्सीन अभी ट्रायल मोड में ही क्यों न हों, ठीक वैसे ही जैसे नई कारें अस्थाई रजिस्ट्रेशन नंबर के साथ चलती हैं।

नए वैक्सीन स्थानीय महामारी और सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्याओं पर निर्भर करते हुए कई स्थितियों से रोग और मौत से निवारण कर सकते हैं। गरीब देशों में वैक्सीनों ने असाधारण सफलता के साथ-साथ गंभीर प्रतिबंधों का सामना भी किया है। स्वस्थ लोगों को दी जाने वाली वैक्सीनों और रोगी मरीजों को दी जाने वाली दवाओं में एक मौलिक अंतर है। वैक्सीनों के कारण स्वस्थ लोगों में हानिकारक प्रभाव हालांकि दुर्लभ होते हैं, सुरक्षा, नैतिकता और सार्वजनिक विश्वास के संदेह उत्पन्न कर सकते हैं। इन पहलुओं को नज़रअंदाज़ करना वैक्सीन के इनकार में विश्वास को कमजोर कर सकता है। यह टीकाकरण कार्यक्रमों पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है।

जिस तरह सड़क दुर्घटनाओं को रोकने के लिए अच्छे रास्ते और यातायात नियमों की निगरानी ज़रूरी है, उसी तरह तेजी से विकसित हो रही और बाज़ार में आ रही नई-नई वैक्सीनों से होने वाली दुर्घटनाओं और नुकसानदायक प्रभावों को रोकने के लिए अच्छी निगरानी और निगरानी प्रणालियों का होना ज़रूरी है।

हमारी मौजूदा सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं की सीमाओं को देखते हुए यह मुश्किल होगा। उचित बुनियादी ढांचे के बिना बड़े पैमाने पर टीकाकरण को तेज करना खतरनाक हो सकता है। यह ऐसे होगा मानो हम किसी जर्जर ट्रैक पर सुपरफास्ट ट्रेन दौड़ा रहे हों।

ग्रामीण और दूरदराज के इलाकों में रहने वाले गरीब और वंचित लोग सबसे ज्यादा जोखिम में होंगे, क्योंकि वहां टीकाकरण के बाद होने वाली परेशानियों की सूचना देने के लिए निगरानी प्रणाली तक उनकी पहुंच नहीं होगी. उनकी दुर्दशा काफ़ी हद तक उन फुटपाथवासियों से मिलती है जो तेज रफ्तार कारों के नीचे आने का खतरा हमेशा झेलते रहते हैं।

कोविड-19 जैसी नई वैक्सीन के आने से नियमित बचपन टीकाकरण कार्यक्रम प्रभावित हो सकता है और हमारी जर्जर सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था पर अतिरिक्त बोझ पड़ सकता है। संभव है कि सीमित संसाधनों को हमारे देश में अन्य उपेक्षित बीमारियों के इलाज से हटा दिया जाए, जिनकी रुग्णता और मृत्यु दर कहीं ज़्यादा है। भारत में हर रोज़ लगभग 25,000 लोग विभिन्न कारणों से मारे जाते हैं। तपेदिक हर दिन 1200 लोगों की जान लेता है, जबकि उसके लिए भी एक टीका मौजूद है, जो गंभीरता और मृत्यु दर को कम करने का दावा करता है। हमारे देश में हर दिन 2000 बच्चे ऐसी बीमारियों से मरते हैं जिन्हें रोका जा सकता है। टाइफाइड एक स्थानिक बीमारी है, जिसके लिए प्रभावी टीका और इलाज मौजूद होने के बावजूद यह समस्या बनी हुई है। ये कुछ उदाहरण हैं।

हमारे देश में अन्य संचारी रोगों की तुलना में, कोविड-19 की संक्रमण से मृत्यु दर 0.1 से 0.3% के बीच है, जो वास्तव में बहुत कम है। इसका मतलब है कि नोवल कोरोना वायरस से संक्रमित 99.9 से 99.7% लोग जीवित रहते हैं। लेकिन, समस्या यह है कि हमारी स्थानिक बीमारियों, जिनकी मृत्यु दर और रुग्णता दर कहीं अधिक है, उन्हें कोविड-19 की तुलना में निगरानी और नियंत्रण के लिए बहुत कम संसाधन मिल पाते हैं। हमें अपनी सार्वजनिक स्वास्थ्य प्राथमिकताओं को पश्चिमी मॉडल के आधार पर नहीं, बल्कि हमारे देश की वास्तविक जन स्वास्थ्य समस्याओं को ध्यान में रखकर तय करना चाहिए।

हालिया राष्ट्रीय सीरोसर्वेक्षण के आंकड़ों से पता चला है कि हमारे देश में 67% या 90 करोड़ भारतीय पहले ही नोवल कोरोनावायरस से संक्रमित हो चुके हैं। दुनिया भर के अध्ययनों से पता चलता है कि प्राकृतिक संक्रमण से स्वस्थ हुए लोगों में एंटीबॉडी का स्तर कम होने के बाद भी लंबे समय तक चलने वाली और मजबूत प्रतिरोधक क्षमता होती है।

सरकार ने कोविड-19 वैक्सीन की 150 करोड़ खुराक के लिए 35,000 करोड़ रुपये आवंटित किए, जो 75 करोड़ लोगों को टीका लगाने के लिए पर्याप्त है। संक्रमण के बाद स्वाभाविक रूप से प्राप्त प्रतिरक्षा की प्रभावशीलता और अवधि के बारे में मौजूदा वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर, व्यापक टीकाकरण से बचा जा सकता था। यह वास्तव में उस स्थिति के समान है जहां पहले से ही स्तनपान कर रहे बच्चे को फॉर्मूला दूध पिलाया जा रहा है।

व्यापक टीकाकरण की बजाय, हम कमजोरियों और बुजुर्गों वाले लोगों के लिए लक्षित टीकाकरण का सहारा ले सकते थे। इस तरह हम व्यापक टीकाकरण अभियान के लिए आवंटित 35,000 करोड़ रुपये में से एक बड़ी राशि बचा सकते थे और इसे अन्य महत्वपूर्ण सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्याओं के लिए उपयोग में ला सकते थे। उदाहरण के लिए, जल और स्वच्छता के लिए केवल 21,158 करोड़ रुपये आवंटित किए गए थे। हमारे देश में बीमारी का एक बड़ा बोझ जल और स्वच्छता से संबंधित है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि केवल टीकाकरण से ही अच्छा स्वास्थ्य हासिल नहीं किया जा सकता। अच्छे स्वास्थ्य के लिए मजबूत सार्वजनिक स्वास्थ्य ढांचा, सुरक्षित पेयजल, पौष्टिक भोजन, उचित आवास, स्वच्छ वातावरण और विवेकपूर्ण तरीके से टीकाकरण का इस्तेमाल – ये सभी चीजें जरूरी हैं।

दवा और टी20 क्रिकेट के बीच कोई अंतर नहीं।

क्रिकेट की तरह, चिकित्सा का तरीका भी अब व्यापारीकरण, रमणीयकरण और दर्शक स्पोर्ट में बदल गया है।

बीते जमाने में, टेस्ट मैच क्रिकेट का ही सबसे ज्यादा बोलबाला था। ये वो दिन थे जब टेलिविजन नहीं आया था, सिर्फ ट्रांजिस्टर हुआ करता था। स्कूल और कॉलेज के छात्र, ऑफिस में काम करने वाले और अफसर सभी, लोग पूरे 5 दिन चलने वाले टेस्ट मैच की गेंद-दर-गेंद कमेंट्री सुनने के लिए अपने छोटे ट्रांजिस्टर से चिपके रहते थे। खिलाड़ी सफेद कपड़े पहनते थे, और उनका पहनावा और व्यवहार दोनों ही सज्जनता का परिचय देते थे। बहुत कम खिलाड़ी पैसा कमाने या अमीर बनने के लिए क्रिकेट खेलते थे। उन्होंने कभी विज्ञापनों के लिए कोई कॉन्ट्रैक्ट नहीं किया था। ना ही उस समय कोई अमीर स्पॉन्सर हुआ करते थे। क्रिकेट उतना ही शुद्ध था जितना कि खिलाड़ियों के सफेद कपड़े। उस दौर में किसी भी तरह के "हितों का टकराव" नहीं हुआ करता था। अंपायर का फैसला, भले ही गलत होता, उसे खिलाड़ी खेल भावना के साथ स्वीकार कर लेते थे। तब थर्ड अंपायर जैसा कोई पद भी नहीं हुआ करता था।

तब आया 1970 का दशक, और ऑस्ट्रेलिया के मीडिया मुग़ल, केरी पैकर की क्रिकेट जगत में एंट्री हुई। पैकर मूल रूप से एक व्यापारी व्यक्ति थे, जिन्होंने खिलाड़ियों को धन और प्रसिद्धि का लालच देकर, टेस्ट मैचों को किनारे लगाते हुए, वनडे मैचों (एकदिवसीय अंतर्राष्ट्रीय मैच) का रास्ता खोल दिया। खिलाड़ियों द्वारा सफेद जर्सी का त्याग, क्रिकेट की उस मासूमियत को खोने का प्रतीक बन गया। सज्जनों के खेल से, क्रिकेट एक दर्शक खेल में तब्दील हो गया। इसके बाद आया, आज का सबसे लोकप्रिय फॉर्मेट, टी20 क्रिकेट। टेस्ट क्रिकेट की जटिलताएं और बारीकियां, जो शुद्ध क्रिकेट प्रेमियों को पसंद आती थीं, अब कम होते फैन फॉलोइंग के साथ, बीते दौर की विरासत सी लगने लगीं। व्यावसायिक हितों से प्रेरित ऊंचे दांव, तीसरे अंपायर और रिप्ले के इस्तेमाल का दौर ले आए।

दशकों पहले, पूरे परिवार के लिए एक पारिवारिक चिकित्सक या सामान्य चिकित्सक ही काफी होते थे। उनका संचित ज्ञान और कौशल वास्तविक दुनिया के रोगियों को वास्तविक दुनिया के वातावरण में देखने के प्रत्यक्ष नैदानिक अनुभव से हासिल होता था। वे मरीजों की समस्याओं को गहराई से समझते थे और उनकी पृष्ठभूमि के अनुसार इलाज को व्यक्तिगत रूप से अनुकूलित कर सकते थे। निदान मुख्य रूप से रोगी के इतिहास और शारीरिक परीक्षणों के आधार पर किया जाता था, जिसमें कम से कम जांचों की आवश्यकता होती थी। इन डॉक्टरों द्वारा हासिल किया गया ज्ञान, अंतर्ज्ञान और कौशल किसी पाठ्यपुस्तक के पन्नों के बीच सीखी जा सकने वाली चीजों से परे थे। और, पुराने जमाने के टेस्ट क्रिकेटरों की तरह, इन अच्छे डॉक्टरों ने धन-दौलत से ज्यादा ख्याति अर्जित की। उस समय, डॉक्टर को ही सबसे ज्यादा जानकारी मानी जाती थी। डॉक्टरों के खिलाफ मुकदमे या हिंसा की घटनाएं भी कम ही होती थीं।

पिछले कुछ दशकों में, चिकित्सा पद्धति का परिदृश्य क्रिकेट की तरह ही बदल गया है। टेक्नोलॉजी में प्रगति ने चिकित्सा देखभाल को व्यक्तियों और राज्य दोनों के लिए खर्चीला बना दिया है। इसने "विज्ञान द्वारा लाए गए विस्थापन" पर जोर दिया है, जिसमें विशेषज्ञता पर बल दिया जाता है। पारिवारिक चिकित्सक का गौरव स्थान, विशेषज्ञों और सुपर-विशेषज्ञों द्वारा हथिया लिया गया, जिनमें से कुछ को तो "सेलिब्रिटी डॉक्टर" का दर्जा भी प्राप्त हो गया। मरीज जल्दी ठीक होने की उम्मीद में अधीर (शब्दांश अभिप्राय) हो गए। क्रिकेट और चिकित्सा दोनों में तत्काल परिणाम की लालसा, विचित्र समय का संकेत बन गई है।

चिकित्सा प्रौद्योगिकी में प्रगति के साथ, डॉक्टर-मरीज के रिश्ते कमजोर पड़ गए हैं। मशीनें इंसानों की जगह ले रही हैं। चिकित्सा सेवाओं के कॉर्पोरेटाइजेशन ने एक तेजी से बढ़ते उद्योग को जन्म दिया है, जो निजी क्लीनिकों को खत्म कर रहा है। ज्यादातर डॉक्टरों को कॉर्पोरेट अस्पतालों में काम करना पड़ता है, जिससे उनकी स्वायत्तता खत्म हो जाती है। एक नेक पेशे और एक जुनून से, चिकित्सा अब एक बड़ा व्यापार बन गई है।

आपके चिकित्सा क्षेत्र में मौजूद अनलिमिटेड को बिल्कुल असमान से अलग किया गया है। कई हितधारकों की वजह से कई तरह के हितों का दुश्मन पैदा हो जाता है। जैसा कि आजकल क्रिकेट में होता है, वैसे ही व्यापार आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों और समुदायों को प्रभावित कर रहा है। यहां तक कि रिसर्च जगत भी इससे पहले नहीं हो रहा है। हाई-प्रोफाइल जर्नल "द लैंसेट" ने कोविड-19 पर एक बहुचर्चित शोधपत्र वापस लिया, जो कि फर्जी आंकड़ों पर आधारित था। यह कुछ मशहूर क्रिकेटरों पर लाइक वाले "मैच फिक्सिंग" के सहायक की तरह है।

कोविड-19 महामारी ने चिकित्सा के व्यावसायीकरण के कारण बनी कमियों को उजागर कर दिया है, जो व्यवहार, शोध और नीति, सभी क्षेत्रों में मौजूद है। भारत में कोविड-19 की भयानक दूसरी लहर ने आपात स्थितियों से निपटने में कॉर्पोरेट स्वास्थ्य सेवा मॉडल की सीमाओं को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित कर दिया। मजबूत सार्वजनिक स्वास्थ्य ढांचे के अभाव में, सीमित अस्पताल सुविधाएं मरीजों की संख्या से जूझ रहीं थीं, न कि वायरस की घातकता से।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव एक बड़ी समस्या है। कोविड-19 के मरीजों को इलाज के लिए दूर-दराज के शहरी अस्पतालों का रुख करना पड़ा, जिससे वहां पहले से ही फैली अव्यवस्था और भी बढ़ गई।

एक प्रतिष्ठित ब्रिटिश मेडिकल जर्नल के अनुसार, व्यावसायिक और राजनीति ने शोध और समुदायों को भी प्रभावित किया। कैरियर साइंटिस्ट और शिक्षाविद निजी नौकरों के मछुआरे से प्रभावित थे। कोविड-19 नियंत्रण के लिए सामुदायिक स्वास्थ्य विशेषज्ञों और महामारी विज्ञान के बजाय "मशहुर डॉक्टर (सेलिब्रिटी चिकित्सक)" की सलाह को अंतिम रूप दिया गया। चिकित्सा क्षेत्र टी20 क्रिकेट की तरह एक दर्शक खेल बन गया। ऐसा लगता है कि टीके दशकों में विकसित हुए थे, लेकिन यह एक चुनौती है कि एक साल के अंदर ही कोविड-19 की वैक्सीन बनकर तैयार हो जाए। पहले जहां पारिवारिक चिकित्सकों की सलाह पर प्लांट थे, वहीं महामारी के दौरान "टीका लगाने में हिचकिचाहट (वैक्सीन हिचकिचाहट)" को दूर से ही मशहूर फिल्मी सितारों और प्रशंसकों के लिए प्रचारित किया जा रहा था। यह कुछ हद तक प्रसिद्ध क्रिकेटरों और फिल्मी सितारों द्वारा कोल्ड्रिक्स के प्रचार के रूप में है, जो सामाजिक विपणन का एक नवीन और प्रभावशाली रूप है और निश्चित रूप से स्थापित है।

बीमारियां किताबें नहीं पढ़तीं। हर बीमारी में कुछ असामान्य मामले होते हैं, जिन पर डॉक्टरों का विशेष ध्यान जाता है। इन मामलों पर पेशेवर सम्मेलनों में विस्तार से चर्चा की जाती है और उन्हें प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित किया जाता है। लेकिन, कई बार सालों तक इन असामान्य मामलों को देखते हुए डॉक्टरों की सोच प्रभावित हो सकती है और ये मामले उनके लिए एक आदर्श बन जाते हैं। आजकल के मीडिया भी ऐसे ही असामान्य मामलों को उजागर करने में शामिल हो जाते हैं क्योंकि ये मामले लोगों का ध्यान खींचते हैं। इस तरह के अतिरंजित चित्रण से जनता का नजरिया भी विकृत हो जाता है और वे एक सामान्य, लेकिन अपने आप ठीक हो जाने वाली बीमारी के गंभीर लेकिन दुर्लभ परिणामों के कारण लगातार दहशत की स्थिति में रहते हैं। सार्वजनिक स्वास्थ्य नीतियों को ज्यादातर, कम-चर्चित मामलों को ध्यान में रखकर बनाई जानी चाहिए, जिन्हें आंकड़ों की भाषा में "सामान्य वितरण" कहा जाता है। हालांकि, ये मामले न तो ध्यान आकर्षित करते हैं और न ही इससे किसी को नाम कमाने का मौका मिलता है। वास्तविकता यह है कि भारत में नोवल कोरोनावायरस की संक्रमण से मृत्यु दर 0.1% या उससे कम है। हमें इस आंकड़े के आसपास सीमित संसाधनों का संतुलन बनाने के लिए समझौता करना होगा। यही सार्वजनिक स्वास्थ्य का एक मजबूत अभ्यास है, भले ही यह किसी नए वायरस के खिलाफ एक नाटकीय लड़ाई का रोमांच न दे पाए।

प्राचीन चीन में डॉक्टरों के एक परिवार से ताल्लुक रखने वाले एक प्रसिद्ध चिकित्सक से एक बार पूछा गया कि उनके भाइयों में से कौन सबसे प्रसिद्ध है। उसने जवाब दिया, "मेरे सबसे बड़े भाई बीमारी के आने से पहले ही उसकी आहट सुन लेते हैं और उसे जड़ से मिटा देते हैं, इसलिए उनका नाम घर से बाहर नहीं निकलता। मेरे दूसरे भाई बीमारी को उसके शुरुआती चरण में ही ठीक कर देते हैं, इसलिए उनका नाम भी पड़ोस से बाहर नहीं जाता। लेकिन मैं, नसों में

चीरा लगाता हूं, काढ़े पिलाता हूं और शरीर की मालिश करता हूं। इसलिए कभी-कभी मेरा नाम बाहर आ जाता है और रईसों के बीच सुना जाता है।"

बीते जमाने का कोई व्यक्ति यह कह सकता है - "यह तो खेल नहीं है!

अब वक्त है धीमी गति से सोचने का

सरकारों ने महामारी को एक स्प्रिंट दौड़ समझ लिया, जहां बिना सोचे समझे तेज रफ्तार ही सबसे अहम थी। लेकिन यह एक मैराथन साबित हो रही है, जिसमे सहनशक्ति, धैर्य और योजना की आवश्यकता होती है।

नोबेल पुरस्कार विजेता डैनियल कहनेमान ने ही "धीमी और तेज सोच" का वाक्यांश गढ़ा था। तेज सोच सहज और सरल होती है, जबकि धीमी सोच सोच-समझकर लिए गए प्रयास का परिणाम होती है। "तेज सोचने" के बाद, "धीमी सोचने" के लिए समय निकालना फायदेमंद हो सकता है।

महामारी से निपटने के तरीकों को डर और घबराहट ने जन्म दिया। आसन्न खतरे के डर ने लोगों को जल्दबाजी में और बिना सोचे समझे फैसले लेने पर मजबूर कर दिया। सरकारें उस स्थिति में ऐसे छात्रों की तरह थीं जो अपने पाठ्यक्रम से बाहर के विषयों पर परीक्षा दे रहे हों। बिना तैयारी के छात्रों की तरह, उन्होंने नकल का सहारा लिया। एक के बाद एक देश ने कम्युनिस्ट चीन द्वारा किए गए कठोर उपायों की नकल की, और नकल करने वाले देशों ने मूल देश से भी अधिक कठोर कदम उठाए।

विवेचना के कारण विरोधाभास पैदा हो गया, जैसा कि अक्सर होता है। शुरुआत में आम जनता द्वारा फेस मास्क के इस्तेमाल को लेकर विरोधाभासी विरोधाभासी संदेश सामने आए थे। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लू एच ओ) ने यह भी घोषणा की कि बिना लक्षण वाले लोग वायरस नहीं फैलाएंगे, अपना रुख बदल लेंगे। और फिर बाद में डब्लू एच ओ ने यह कहा कि बिना लक्षण वाले लोगों का परीक्षण नहीं किया जाना चाहिए, अपना बयान वापस ले लिया। इनमें से कोई भी कथन सत्य या असत्य नहीं है, लेकिन उन्हें संदर्भ में देखना आवश्यक है। महामारी महामारी के अनुसार विकसित होती है। किसी भी समय किसी एक क्षेत्र में जो लागू होता है, दूसरे वह क्षेत्र में लागू नहीं हो सकता है, जो महामारी के अलग-अलग चरण में हो सकता है।

बीमारी के फैलने का मुकाबला करना एक गतिशील प्रक्रिया है, ठीक उसी तरह जैसे कार चलाना। गाड़ी को रोक से शुरू करने के लिए ईंधन की अधिक खपत वाले पहले गियर का इस्तेमाल करना पड़ता है। एक बार रफ्तार पकड़ लेने के बाद, ईंधन की बचत के लिए ऊपरी गियरों का इस्तेमाल किया जाता है। वाहन चलाने के अंत में, एक बार फिर, ईंधन की अधिक खपत वाले निचले गियरों का उपयोग किया जाता है। बीमारी के फैलने के जवाब में भी इसी तरह का क्रम होता है। जब प्रकोप शुरू होता है तो संक्रमण को रोकने के लिए संबधित उपायों को लागू किया जाना चाहिए। लेकिन, एक बार जब बीमारी समुदाय में फैल जाती है, तो ऐसे संबंधित उपाय लागत के लिहाज से बहुत प्रभावी नहीं होते हैं। इस चरण में रणनीति बदलकर मृत्यु दर को नियंत्रित करने पर ध्यान दिया जाना चाहिए। इसमें मामलों का जल्दी पता लगाकर इलाज सुनिश्चित करना और बिना लक्षण वाले लोगों को अकेला छोड़ देना शामिल है।

जब बीमारी मिटने के करीब होती है, तो एक बार फिर परीक्षण, पता लगाने और आइसोलेशन जैसे रोकथाम उपाय महत्वपूर्ण हो जाते हैं, जिनमें बिना लक्षण वाले संपर्कों का परीक्षण भी शामिल होता है।

ज्यादातर देशों की प्रतिक्रिया तो बस दहशत में लिए गए "तेज फैसले" ही थीं, लेकिन विडंबना यह है कि वही चीज कम दिखी - किसी खास क्षेत्र में महामारी किस चरण में है, इस पर विचार करने के लिए "धीमी गति से सोचने" की गंभीरता। हम ईंधन की अधिक खपत वाले पहले गियर में ही गाड़ी चलाते रहे।

स्प्रिंट अब समाप्त हो चुका है। '"तेज सोच"' को छोड़ने का समय है। वर्तमान में हम एक मैराथन दौड़ रहे हैं। अब दूसरी हवा और कुछ '"धीरे सोचने"' का समय है। स्प्रिंट को हारने के बाद, हमें मैराथन जीतने का प्रयास करना चाहिए। सफल होने के लिए, हमें उन उपायों को छोड़ देना चाहिए जो स्प्रिंट के लिए उपयुक्त थे और मैराथन के लिए उपयुक्त हैं।

चूंकि संक्रमण अब व्यापक समुदाय संचरण की स्थिति में है, तो गहन जांच और ट्रैकिंग जैसे रोकथाम उपायों, खासकर बिना लक्षण वाले लोगों के लिए, को बंद कर दिया जाना चाहिए। अब अंतरराज्यीय यात्रा के लिए आर टी-पी सी आर परीक्षण की आवश्यकता भी तर्कसंगत नहीं है।

इससे बीमारी के डर और भेदभाव को कम करने में काफी मदद मिलेगी। लोगों से "जोखिम संचार" ठीक से करना एक और महत्वपूर्ण कदम है। ज्यादातर सरकारों का तरीका रहा है कि लोगों में डर पैदा करके उन्हें तथाकथित "कोविड उपयुक्त व्यवहार" का पालन कराने के लिए मजबूर किया जाए। उचित जोखिम संचार के बिना, "तेज सोच" से प्रेरित ज्यादातर "कोविड उपयुक्त व्यवहार" केवल रस्मों में सिमट कर रह गए हैं, जिनका बीमारी के फैलाव को रोकने पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। यहां तक कि कोविड उपयुक्त व्यवहार का प्रचार करने और अपनाने वाले फिल्मी सितारे खुद भी इस वायरस से संक्रमित हो गए हैं! इससे हमें रुक कर इन उपायों के साक्ष्य आधार का मूल्यांकन करना चाहिए।

कोविड से जुड़े कुछ उपाय दिखावटी भी बनकर रह गए हैं। इसका एक उदाहरण घर से बाहर न निकलने और बाहर निकलने पर मास्क पहनने की सलाह है। न्यूयॉर्क टाइम्स में 26 मई, 2021 की रिपोर्ट के अनुसार, इस दिशानिर्देश का मूल स्रोत काफी दिलचस्प है। अमेरिका के रोग नियंत्रण और रोकथाम केंद्र (सी डी सी) ने एक वैज्ञानिक पेपर की गलत व्याख्या करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि बाहरी वातावरण में संक्रमण का खतरा 10% है। इस गलत दिशानिर्देश के जवाब में, उस शोधपत्र की लेखिका ने ट्वीट कर कहा कि वास्तविक रूप से बाहरी वातावरण में संक्रमण का खतरा केवल 0.1% है। उन्होंने अपने ट्वीट में यह भी लिखा कि स्वस्थ रहने के लिए बाहरी वातावरण में जयादा समय बिताना फायदेमंद है, क्योंकि बाहर संक्रमण का खतरा न के बराबर होता है।

इस गलतफहमी के कारण दुनिया भर में बाहरी गतिविधियों को प्रतिबंधित कर दिया गया। कई लोग जो अपना व्यवसाय खुले वातावरण में करते हैं, जैसे विक्रेता, स्ट्रीट फूड विक्रेता और टैरेस रेस्टोरेंट मालिक, न्यूनतम संचरण जोखिम के साथ अपनी आजीविका चलाते रह सकते थे।

रिस्क संचार को कोविड-19 के संदर्भ में विचार करना चाहिए। वैश्विक रूप से, वायरस से संक्रमित होने से मरने का खतरा 0.3% है, भारत में यह 0.1% है। हमारे देश में यदि कोई व्यक्ति वायरस से संक्रमित होता है, तो उसकी जीवित रहने की संभावना 99.9% है। जीना हमें बहुत अधिक जोखिमों के लिए सामना कराता है: प्रतिदिन 1500 भारतीय तपेदिक से मर जाते हैं, प्रतिदिन 400 युवा लोग सड़क दुर्घटनाओं में मरते हैं (और दस गुना अधिक जीवनभर अपंग हो जाते हैं), और प्रतिदिन 2000 बच्चे रोकने योग्य बीमारियों से मर जाते हैं, इनमें से कुछ उदाहरण हैं।

कोविड-19 संक्रमणों में से अधिकांश मामले बिना लक्षण वाले होते हैं। जून 2021 में जारी किए गए एक संयुक्त एम्स-डब्ल्यूएचओ अध्ययन के अंतरिम परिणामों से पता चलता है कि 60-70% आबादी, जिसमें बच्चे भी शामिल हैं, इस नोवल वायरस के संपर्क में आ चुके हैं। देश के कुछ हिस्सों में किए गए अन्य अध्ययनों में 80% आबादी में IgG एंटीबॉडी पाए गए हैं। दुनिया भर के अध्ययन बताते हैं कि प्राकृतिक संक्रमण एक मजबूत और लंबे समय तक चलने वाली रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करता है। संक्रमण के बाद, वायरस हमारे शरीर में 10-15 दिनों तक रहता है और

गुणा करता है, जिससे हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली को लंबे समय तक सक्रिय मेमोरी और टी कोशिकाओं सहित वायरस से परिचित होने का पर्याप्त मौका मिल जाता है। तार्किक रूप से, यह रोग प्रतिरोधक स्मृति विभिन्न प्रकारों के खिलाफ भी काम करनी चाहिए। ठीक उसी तरह जैसे हम उन लोगों को पहचान लेते हैं जिन्हें हम जानते हैं, भले ही कई सालों के बाद उनके चेहरे-मोहरे में थोड़ा बहुत बदलाव आ गया हो।

प्राकृतिक प्रतिरक्षा क्षमता के निर्माण के प्रकृति के प्रयासों को दोहराने नहीं, बल्कि उनका समर्थन करने के प्रमाण और तर्क कम से कम संसाधनों के साथ तीव्र गति से आबादी स्तर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को प्राप्त करने में मदद कर सकते थे। इसे "स्मार्ट टीकाकरण" रणनीति अपनाकर हासिल किया जा सकता था। अगर हम उन लोगों को टीकाकरण से बाहर रखते जिनमें पहले से ही आईजी जी एंटीबॉडी मौजूद होते, तो संभवत: हमें अपनी आबादी के केवल एक अंश का ही टीकाकरण करना पड़ता, जिससे बहुत सारे संसाधन और धन की बचत होती।

हमारे नीति निर्माताओं को गंभीरता से कुछ "धीमी गति से सोचने" की जरूरत है, और साथ ही राजनीति और स्वार्थों के टकराव को दरकिनार रखना होगा। क्या ये बहुत अधिक मांग है?

कोविड के खिलाफ जंग: असली जीत किसी की नहीं

विकसित देशों में जान बचाने के लिए विकासशील देशों में सख्त उपायों की वजह से मौतें हुईं।

कोविड-19 से भी बड़ी विपत्ति को रोकने के लिए, दुनिया को इस नये कोरोनावायरस के खिलाफ "जब तक जीत ना मिले तब तक लड़ाई" वाले रुख को छोड़ देना चाहिए था।

सम्राट अशोक को कलिंगा युद्ध के बाद जब युद्ध के मैदान में मृत्यु और तबाही का नजारा देखने को मिला, तो उन्हें गहरा पछतावा हुआ और वे गहरे शोक में डूब गए।

इसी तरह, चीनी योद्धा और विचारक सूर्य तजु ने सलाह दी थी, "जो युद्ध करना चाहता है उसे पहले उसकी कीमत गिननी चाहिए। यदि युद्ध लंबा चलता है, तो सैनिकों के हथियार कुंद पड़ जाएंगे और उनका उत्साह कम हो जाएगा। यदि आप किसी शहर की घेराबंदी करते हैं, तो आप अपनी शक्ति क्षीण कर लेंगे।" वे आगे कहते हैं, "समझदार नेता की योजनाओं में लाभ और हानि पर एक साथ विचार किया जाना चाहिए।"

महाभारत में, पाण्डवों की विजय का उत्सव मातम में बदल गया। युद्ध के मैदान को जीत का मैदान माना जा रहा था, लेकिन वहां मृतकों और घायलों को देखकर उनका उत्साह शोक में बदल गया।

कोविड-19 के खिलाफ युद्ध की घोषणा करके, दुनिया ने अपनी क्षमता से कहीं ज्यादा बड़ा लक्ष्य चुन लिया। दहशत में लिए गए जल्दबाजी के फैसलों में युद्ध के अप्रत्यक्ष नुकसान, यानी मौतों और तबाही को ध्यान में नहीं रखा गया। इससे सबसे ज्यादा प्रभावित निम्न-आय वाले देशों के लोग हुए। सख्त कोविड-19 नियंत्रण उपाय समान रूप से लागू

नहीं किए जा सकते। "लैंसेट" पत्रिका में प्रकाशित ब्रॉडबेंट और उनके सहयोगियों के शोधपत्र के अनुसार, इन उपायों की लागत गरीब देशों को ही चुकानी पड़ती है। लेखकों ने निष्कर्ष निकाला है कि इस कड़े नियंत्रण के कारण विकासशील देशों में मौतें हुईं, ताकि विकसित देशों में लोगों की जान बचाई जा सके। गरीब और अमीरों के बीच की यह "सामाजिक दूरी" ज़रूरी "कोविड उपयुक्त व्यवहार" के लिए बनाए रखी जाने वाली "शारीरिक दूरी" से कहीं ज्यादा बड़ी है। यही "सामाजिक दूरी" गरीबों के लिए जीवन और मृत्यु के बीच का फासला तय कर सकती है।

कोविड-19 के खिलाफ जंग ने लोगों की रोजी-रोटी पर विनाशकारी प्रभाव डाला है, जिससे दुनिया के अधिकांश नागरिकों के समग्र स्वास्थ्य पर खतरा पैदा हो गया है। लोक स्वास्थ्य पर पड़ने वाला नकारात्मक प्रभाव नोवल कोरोनावायरस के नियंत्रण के मामूली प्रभाव से कहीं अधिक होगा। विशेष रूप से निम्न-आय वाले उष्णकटिबंधीय देशों में, जहां अधिकांश स्वास्थ्य संसाधन युद्ध स्तर पर कोविड-19 के नियंत्रण में लगा दिए गए थे, वहां अन्य संक्रामक रोगों का प्रकोप तेजी से बढ़ने का खतरा है।

भारत ने दुनिया में सबसे बड़ा और सबसे सख्त लॉकडाउन लागू किया। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि लगभग 1 करोड़ प्रवासी मजदूर अपने गांवों में वापस चले गए, जिनमें से कई पैदल और कुछ साइकिल से गए। इतनी जल्दबाजी में लिए गए इतने कड़े फैसले का नतीजा गरीबी, बेरोजगारी और दरिद्रता रहा। यह अनुमान लगाने के लिए किसी जटिल गणितीय मॉडल की जरूरत नहीं थी कि हम एक विनाशकारी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के दौर से गुजरने वाले हैं। अनुमान के अनुसार लगभग 40 करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे चले जाने का खतरा है।

1962 के चीन के साथ युद्ध में हमारी सैन्य कमजोरियां उजागर हो गई थीं। उसी तरह, चीन से उत्पन्न हुए नोवल कोरोनावायरस के खिलाफ मौजूदा लड़ाई में हमारे सार्वजनिक स्वास्थ्य ढांचे की कमियों को बेपर्दा कर दिया गया है। कोविड-19 के अलावा अन्य बीमारियों, जिनसे कहीं ज्यादा मौतें होती हैं, का इलाज प्रभावित हुआ है। इसकी वजह स्वास्थ्य सेवाओं पर अत्यधिक दबाव और मरीजों का कम आना था। यहां तक कि गंभीर गैर-कोविड बीमारियों वाले मरीज भी कोविड से संक्रमित होने के डर से अस्पताल जाने से कतराते थे। हाल के अनुमानों से भारत में महामारी के दौरान हुई अतिरिक्त मौतों का आंकड़ा काफी अधिक है, जिसका मतलब है कि कोविड-19 से होने वाली मौतों की संख्या कम करके बताई जा रही है। हालांकि, युद्ध जैसे माहौल में, जहां कर्फ्यू युद्धकाल से भी ज्यादा सख्त थे, इन अतिरिक्त मौतों का एक बड़ा कारण गैर-कोविड स्थितियां हो सकती हैं। युद्ध के दौरान, सच्चाई और आंकड़ों को छिपाने के लिए प्रचार के साथ-साथ 'शोर' और 'धूल' होता रहता है। युद्ध जीतने के लिए असहमति को बर्दाश्त नहीं किया जाता या उसे दबा दिया जाता है। इसी तरह की युद्ध जैसी रणनीतियों का इस्तेमाल दुनिया भर की सरकारों ने इस महामारी में किया।

चिकित्सक, पैरामेडिकल कर्मचारी और फ्रंटलाइन वर्कर कोरोना योद्धा बन गए। इस जंग के सैनिकों के रूप में उन्होंने सबसे ज्यादा बोझ उठाया। एक तरफ उन्हें थालियों की गूंज और दीयों की रोशनी से सम्मानित किया गया, वहीं दूसरी तरफ संक्रमण के डर से समाज में उन्हें अक्सर भेदभाव का भी सामना करना पड़ा। इसका उनकी मानसिक सेहत पर बुरा असर पड़ा और बहुतों को व्यापक थकावट का सामना करना पड़ा। कुछ को अस्पतालों में भारी संख्या में मरीजों के कारण उच्च वायरल लोड के संपर्क में आने से संक्रमण हुआ और उनकी मृत्यु भी हो गई।

युद्ध-स्तर पर लगभग सभी चीजें की गईं, सिवाय एक दिलचस्प अपवाद के। मेडिकल छात्रों को घर भेज दिया गया, मेडिकल शिक्षा ऑनलाइन हो गई, जिससे मेडिकल छात्रों की वास्तविक दुनिया के मरीजों से दूरी बन गई। जबकि कुछ बुजुर्ग डॉक्टर भी अपने "आवश्यक कर्तव्यों" के लिए बाहर निकल रहे थे, दूसरी तरफ मेडिकल स्कूलों को बंद कर दिया गया, जाहिरा तौर पर युवा मेडिकल छात्रों को सुरक्षित रखने के लिए, जो वायरस के प्रति बहुत कम संवेदनशील होते हैं। यह एक विरोधाभास था। ज़रा सोचिए, युद्ध के दौरान राष्ट्रीय रक्षा अकादमी या भारतीय सैन्य अकादमी को बंद कर दिया जाए!

चिकित्सा शिक्षा के निलंबित होने से, जो भविष्य की स्वास्थ्य देखभाल की नींव को कमजोर करता है, इसके अलावा, अन्य शैक्षणिक संस्थान दो साल से भी अधिक समय से बंद हैं। इससे आने वाली पीढ़ी पर सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और शैक्षणिक रूप से दीर्घकालिक नुकसान होगा।

क्या ये सभी कठोर उपाय कारगर साबित हुए? उपलब्ध आंकड़े युद्ध-स्तर पर लागू किए गए इन असाधारण उपायों की सफलता का प्रमाण नहीं देते हैं।

भारत में महामारी की पहली लहर के बाद, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (ICMR) के सर्वेक्षण के अनुसार, देशव्यापी सीरोपॉजिटिविटी 21% थी। दूसरी लहर के बाद, ICMR द्वारा किए गए सीरोसर्वेक्षण के ताजा दौर से पता चलता है कि लगभग 67% या 90 करोड़ से अधिक भारतीय नोवेल कोरोनावायरस से संक्रमित हो चुके हैं (इसके बाद इसे अब नोवेल कहना शायद सही नहीं है)।

इसका एकमात्र सकारात्मक पहलू यह है कि इतनी बड़ी संख्या में संक्रमण होने के कारण भारत में संक्रमण मृत्यु दर 0.1% से कम हो गई है। अगर कोई इस वायरस से संक्रमित भी हो जाता है, तो उसके बचने की संभावना लगभग 99.9% है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के रोग नियंत्रण और रोकथाम केंद्र के अनुसार, वहां संक्रमण मृत्यु दर लगभग 0.3% है। इसलिए, भले ही हम भारत में हो रही भारी अल्प-रिपोर्टिंग की संभावनाओं को ध्यान में रखें, फिर भी कोविड-19 से होने वाली मृत्यु दर हमारे देश में अधिकांश स्थानिक संचारी और साथ ही गैर-संचारी रोगों की तुलना में बहुत कम है।

आखिर में, यह सवाल पूछा जा सकता है कि क्या कोविड-19 के खिलाफ छेड़े गए इस पूर्ण युद्ध ने हुए नुकसान की भरपाई कर पाया? या फिर कम तीव्रता वाला संघर्ष ज्यादा बेहतर होता? उम्मीद करते हैं कि विवेक विजयी होगा और कोविड -19 के खिलाफ "जब तक जीत ना मिले तब तक लड़ाई" वाले रुख को बदलकर, वायरस की घातकता के अनुपात में और हमारी अन्य महत्वपूर्ण सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्याओं को ध्यान में रखते हुए "कम तीव्रता वाला संघर्ष" अपनाया जाएगा।

भय और महामारी - मन की स्वतंत्रता की ओर मुक्त होना

स्वतंत्रता दिवस पर चिंतन: आतंक फैलाने का विज्ञान और कला

गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर के शब्दों में,

जहाँ मन निर्भय है और सिर ऊँचा है,

जहाँ ज्ञान स्वतंत्र है,

जहाँ संसार को संकीर्ण घरेलू दीवारों से विभाजित नहीं किया गया है,

जहाँ सत्य की गहराई से निकला हुआ ज्ञान है,

जहाँ अथक प्रयास पूर्णता की ओर हाथ बढ़ाता है,

जहाँ तर्क की निर्मल धारा अपना रास्ता नहीं भूली है,

जहाँ वह जड़ निष्क्रिय आदतों की मृत रेत में नहीं खोई है;

जहाँ तू हे मातृभूमि,

हमें निरंतर विस्तृत विचार और कर्म की ओर ले चलती है,

स्वतंत्रता के उस स्वर्ग में,

हे मेरे पिता,

मेरा देश जागृत हो!

75वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर हमारे अधिकांश लोग महामारी के भय में जी रहे हैं। स्थायी महामारी में, दुनिया के ज्यादातर लोगों की प्रतिक्रिया ने लोगों के अनुपात को और बढ़ाया है। विश्व एक वैश्विक "चिकित्साजनित" (आईट्रोजेनिक) आपदा का सामना कर रही है।

ज़ाहिर है, लोगों को उपन्यास में आतंकवाद से उबरने के लिए हर लहर के आने या आने वाले संकट के साथ उनकी स्वतंत्रता और स्वावलंबन पर भी शांति से लगाम दिया जा रहा है। बार-बार दिखने वाले लोग लंबे समय से लोगों की रोजी-रोटी स्थिरता बनाए रख रहे हैं और लंबे समय तक कोविड-19 से बचने वालों की तुलना में गरीबी से जुड़ी स्थिरता से ज्यादातर लोग जुड़ेंगे।

इस माहौल में, चारों तरफ डर का साया है और सिर ऊंचा रखना मुश्किल हो गया है।

ज्ञान, खासकर वैज्ञानिक ज्ञान, तब फलता-फूलता है जब विपरीत दृष्टिकोणों और वैकल्पिक परिकल्पनाओं पर बहस और चर्चा होती है। बड़ी असहमतियों से महान विज्ञान का जन्म होता है। चिकित्सा के इतिहास में ऐसे कई उदाहरण हैं जहां डॉक्टरों ने सामूहिक सोच के अनुरूप नहीं चलने के कारण उपहास का पात्र बने और उन्हें बेकार समझा गया, लेकिन बाद में वे सही साबित हुए।

उन्नीसवीं सदी में हंगरी के चिकित्सक इग्नाज सेमेलवीस ने सावधानीपूर्वक एकत्र किए गए आंकड़ों के आधार पर प्रसव के बाद होने वाली उच्च मृत्यु दर को रोकने के लिए हाथ धोने की वकालत की। अपने जीवनकाल में, उन्हें चिकित्सा समुदाय द्वारा उपहासित और बहिष्कृत किया गया, जिन्होंने साक्ष्यों के बावजूद उनके निष्कर्ष को बेतुका बताया। निराश होकर, उन्होंने शराब का सहारा लिया और 1865 में एक शरणालय में जा पहुँचे, जहाँ उनकी पीट-पीटकर हत्या कर दी गई। अपने दृढ़ विश्वास के साहस की उन्होंने भारी कीमत चुकाई। डेढ़ सदी से भी अधिक समय के बाद, दुनिया उनके सलाह को उत्साह के साथ मान रही है!

पेशेवर लोग ताकतवर संघ बनाते हैं, जो कभी-कभी "चिकित्सा जगत की आम सहमति" की आड़ में यथास्थिति को बढ़ावा देते हैं। सामूहिक सोच के खिलाफ जाना आसान नहीं है और यह किसी के अकादमिक और वैज्ञानिक करियर को खतरे में डाल सकता है। इतिहास खुद को दोहरा रहा है। मौजूदा चिकित्सा जगत की आम सहमति के खिलाफ किसी भी दृष्टिकोण को बहस के बजाय दबा दिया जाता है। बहस की जगह अब कठोर नियम ले चुके हैं। ऐसे माहौल में विज्ञान का ह्रास होता है।

अनुदान-आधारित शोध के दौर में, अक्सर वैज्ञानिक शोध कोष वित्तीय मदद देने वाली संस्थाओं से प्रभावित होता है। ज्ञान मुफ्त नहीं है। शोध के जरिए ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनुदान की आवश्यकता होती है। अनुदान देने वाली संस्थाएं अक्सर अपने विशिष्ट क्षेत्रों में ही शोध को प्रोत्साहित करती हैं, और हो सकता है कि वे विवादास्पद निष्कर्षों का समर्थन करने के लिए इच्छुक न हों। इससे शोध की स्वतंत्रता बाधित हो सकती है।

जब अनुसंधान केवल निहित स्वार्थ वाले प्रायोजकों के अनुदान से ही संभव है तो टैगोर के ज्ञान के स्वतंत्र होने के सपने को कैसे साकार किया जा सकता है? शायद इसका एक तरीका राज्य द्वारा अनुसंधान में अधिक निवेश हो सकता है। कॉर्पोरेट व्यावसायिक घरानों से अनलिंक किए गए अज्ञात दाताओं द्वारा उत्पन्न अनुसंधान के लिए एक कोष पर भी विचार किया जा सकता है।

महामारी ने दुनिया को टुकड़ों में बांट दिया है। इस महामारी की प्रतिक्रिया के रूप में कठोर यात्रा प्रतिबंध लगाए गए। टीके उपलब्ध होने के बाद, अब "वैक्सीन पासपोर्ट" लाने पर विचार किया जा रहा है। विडंबना यह है कि वैज्ञानिकों द्वारा टीकों की सुरक्षा और प्रभावकारिता पर सवाल उठाने वालों को सबूतों और आंकड़ों से खारिज करने के बजाय उन्हें "टीका-विरोधी" का लेबल लगा दिया जाता है। यदि वैज्ञानिकों को सबूतों और ठोस आंकड़ों के साथ बहस करने दिया जाए तो इससे लोगों को भी बेहतर तरीके से समझाया जा सकता है और प्रचार और कॉलर ट्यूनों के बजाय "टीका लगाने में हिचकिचाहट" को दूर किया जा सकता है। काश! जैसा कि रवींद्रनाथ टैगोर ने परिकल्पना की थी, तर्क की निर्मल धारा अपना रास्ता भटक गई है।

तर्क की धारा को साफ करने और उसे सही दिशा में ले जाने के लिए कौन सा रास्ता हो सकता है?

अज्ञानता ही भय को जन्म देती है। मीडिया और स्वार्थी लोगों द्वारा हवा भरी जाने पर दहशत जंगल की आग की तरह किसी भी वायरस से भी तेजी से फैलती है। आबादी में दहशत का माहौल लोगों को स्वार्थी तत्वों द्वारा शोषण के प्रति असुरक्षित बना देता है। ऐसे स्वार्थी तत्व चाहते हैं कि जनता का यह सामूहिक भय जितना हो सके उतना लंबा खिंचे।

दुर्भाग्य से, स्वीडन जैसे कुछ गिने-चुने उदाहरणों को छोड़कर, ज्यादातर देशों ने लोगों के साथ एक संरक्षणवादी रवैया अपनाया, उन्हें स्वतंत्र नागरिकों के रूप में नहीं बल्कि आज्ञाकारी बच्चों की तरह माना। जिस तरह माता-पिता अपने बच्चों को अनुशासन में रखने के लिए डर का सहारा लेते हैं, उसी तरह सरकारों, मीडिया और यहां तक कि शिक्षाविदों ने भी लोगों को डराकर और उनमें भय फैलाकर उनका अनुपालन सुनिश्चित करने की कोशिश की।

सामूहिक दहशत का टीका जोखिम संचार है। यह पारदर्शी और सूचित होना चाहिए. घबराहट और डर पैदा करना, कलंक और शर्मिंदगी और उपहास की अपनी शाखाओं के साथ हेरफेर है और जोखिम संचार नहीं है।

वैज्ञानिक तीव्र गति से कारगर टीके विकसित करने, विषाणुओं के विभिन्न रूपों को ट्रैक करने और उनके व्यवहार को समझने के लिए परिशुद्ध चिकित्सा की ओर रुख कर रहे हैं। इसी प्रकार, जनता को सूचित करने और दहशत को खत्म करने के लिए जोखिम संप्रेषण के लिए भी एक समान परिशुद्ध दृष्टिकोण अपनाना वांछनीय है।

लोगों को यह महसूस कराया जाना चाहिए कि हम रोज़ाना कुछ मात्रा में जीवन के जोखिम के साथ रहते हैं। यह जोखिम कभी भी शून्य तक कम नहीं किया जा सकता। इसलिए अगर हम ज़ीरो कोविड केस का इंतजार करें, तो हम सदैव के लिए लॉकडाउन में रहेंगे और अधिकांश लोग भूखमरी से मर जाएँगे इससे पहले कि वायरस हमें पहुंचे। उसी तरह, जैसे सभी श्वासनलीय वायरस, इसमें मौसमिक परिवर्तन होगा। ये छोटे-छोटे मुद्दे किसी भी प्रकार के हित-विरोधी संघर्षों द्वारा पर्वतमालाओं में बदल सकते हैं।

जनता तक पहुंचने वाली सूचनाओं में वैज्ञानिक आंकड़ों और विवेकपूर्ण निर्णयों पर आधारित जोखिम आकलन पर जोर दिया जाना चाहिए। सांख्यिकी विज्ञान भविष्य की आपदाओं की भविष्यवाणी के लिए पिछली लहरों में हुई मौतों का संकलन कर सकता है। विवेकपूर्ण निर्णय में सामाजिक और राजनीतिक मुद्दे शामिल होते हैं। इसमें उन व्यक्तियों और समुदायों के दृष्टिकोण शामिल होते हैं जो जोखिम का सामना कर रहे हैं। अनुभव किए गए लाभों और हानियों के बीच हमेशा एक समझौता होता है - ऐसा लगता है कि इस महामारी में अधिकांश विश्व सरकारों द्वारा इसकी अनदेखी की गई है। कोरोनावायरस से संक्रमित होने के बाद मरने का वैश्विक जोखिम 0.3% है और भारत में युवा आबादी के

कारण यह कम है। इस ठोस डेटा के आधार पर लोगों को बताया जा सकता है कि यदि कोई स्वस्थ व्यक्ति नए वायरस से संक्रमित हो जाता है, तो उसके बचने की संभावना 99.7% है। यह अस्तित्व हमारी अधिकांश स्थानिक बीमारियों की तुलना में कहीं अधिक है। यह जोखिम भी आयु वर्ग के आधार पर एक समान नहीं है। स्वस्थ बच्चों को कोविड-19 से मरने का लगभग कोई खतरा नहीं होता है।

जोखिम संचार में उच्च जोखिम वाले समूहों, जैसे कि सह-रुग्णताओं वाले लोगों, कमजोर बुजुर्गों और शायद कम उम्र के सह-रुग्णताओं वाले लोगों पर भी जोर दिया जाना चाहिए। उनके लिए लक्षित सुरक्षा की सलाह दी जा सकती है, जबकि कम जोखिम का सामना करने वाले स्वस्थ लोग अपनी दिनचर्या जारी रख सकते हैं।

अगर ICMR के नवीनतम सीरो सर्वेक्षण के परिणामों के प्रभाव को ठीक से संचारित किया जाए, तो इससे जनता में दहशत कम हो सकती है। इस सर्वेक्षण में लगभग 67% आबादी में सुरक्षात्मक IgG एंटीबॉडी पाए गए हैं। इसका मतलब है कि एक बड़े हिस्से में या तो कोविड -19 हो चुका है या फिर वैक्सीन लगने से एंटीबॉडी बन चुके हैं। सकारात्मक रूप से संवाद करने से लोगों को यह एहसास दिलाया जा सकता है कि वे वायरस से लड़ने के लिए बेहतर स्थिति में हैं।

आइए इस स्वतंत्रता दिवस पर यह आशा करें कि तर्क और विवेक हमें रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा परिकल्पित "अविरल रूप से विस्तारित विचार और कर्म की; और स्वतंत्रता के उस स्वर्ग की ओर..." वापस ले जाएं।

स्वास्थ्य की दृष्टि से: असंभव को पाने की कोशिश की कीमत

सहकर्मी-समीक्षा शोध पुष्टि करता है कि दहशत और भय ने कोविड से होने वाली मौतों में योगदान दिया। दहशत और गलत नीतियों ने स्वार्थी लोगों को संदिग्ध इलाजों को बढ़ावा देने और 99% प्रभावशीलता का दावा करने का मौका भी दिया!

नॉर्स पौराणिक कथाओं में गरज और बिजली के देवता थोर, विशाल राजा के सामने खड़े थे। उनका गर्व दांव पर लगा था। राजा ने थोर के सामने एक पीने का सींग रखने का आदेश दिया और उसे खाली करने की चुनौती दी। थोर ने प्याला उठाया और एक के बाद एक लंबे घूंट लेने लगा, लेकिन कितना भी गहराई से और कितना भी पिया, उसे अपनी सांस फूलती हुई लगी, पीने का सींग लगभग भरा ही रहा। वह प्याले को खाली करने के लिए तेजी से और गुस्से से प्रयास करता रहा लेकिन सब व्यर्थ, बर्तन में स्तर तो कम हुआ लेकिन वह उसे खाली नहीं कर सका।

थोर तो हैरान रह गया। अपने ही भ्रम में उलझा हुआ, उसने राजा के हावभाव में चिंता को नहीं देखा। थोर को जो चीज थमाई गई थी, वह कोई साधारण प्याला नहीं था। धोखे से, वह सींग पास के समुद्र से जुड़ा हुआ था। और थोर तो समुद्र को ही खाली करने के करीब आ गया था! अनजाने में, वह असंभव को हासिल करने का प्रयास कर रहा था।

यह कहानी प्राचीन पौराणिक कथाओं से ली गई है। क्या हम, दुनिया से नोवल कोरोनावायरस को खत्म करने की कोशिश में, उसी तरह की चुनौती का सामना कर रहे हैं जैसा थोर को प्याला खाली करने का प्रयास करते समय सामना करना पड़ा था? क्या हम भी असंभव को हासिल करने का प्रयास कर रहे हैं?

हमारा देश लोगों का एक समुद्र है और अधिकांश प्राकृतिक रूप से कोरोनावायरस से संक्रमण से उबर चुके हैं। टेस्ट, ट्रेस और आइसोलेट की अनुशंसित रणनीति ने संक्रमण के प्रसार को रोकने या संक्रमण वाले सभी लोगों की पहचान करने में मुश्किल से ही कोई फर्क डाला। इन तरीकों द्वारा केवल एक अंश के संक्रमणों की पहचान की गई थी ताकि 'संचरण की श्रृंखला को तोड़ने' और समुदाय में वायरस के जलाशय को खत्म करने के लिए किया गया था।

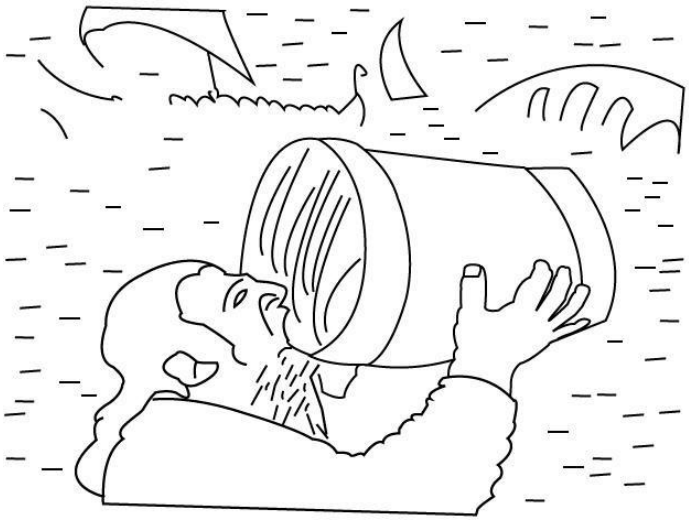

जून 2021 में भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद (ICMR) द्वारा किए गए सीरोसर्वे के दौर से पता चला है कि 67.6% भारतीयों में एंटीबॉडी पाए गए थे। इससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि आश्चर्यजनक रूप से 92 करोड़ से अधिक लोगों में रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो चुकी थी, जो ज्यादातर प्राकृतिक संक्रमण के कारण या आंशिक रूप से टीकाकरण के कारण थी। सर्वेक्षण के समय, 20% से कम आबादी ने एक खुराक ली थी और लगभग 5% ने ही टीके की दोनों खुराक ली थीं। इसलिए हम मान सकते हैं कि हमारे देश में लगभग 75 करोड़ लोगों ने प्राकृतिक संक्रमण से उबरने के कारण प्रतिरक्षा प्राप्त कर ली थी। '"टेस्ट, ट्रीट, आइसोलेट"' रणनीति द्वारा पहचाने गए मामले लगभग 3 करोड़ के आसपास बहुत कम थे। तो अत्यधिक संपर्क अनुरेखण (कॉन्टैक्ट ट्रेसिंग) के अथक (हर्क्यूलियन) या (थोरियन) अनुपात के प्रयासों से हम उस समय देश में केवल 4% मामलों का ही पता लगा पाए थे।
नोवेल सभी आतंकवादी वायरसों का डॉन है, न केवल उसे पकड़ना मुश्किल है बल्कि प्रभावशाली है। और सभी सफल डॉन की तरह, अभिनीत केवल मृत्यु दर से अधिक, डॉ और त्रय से शासित। जुलाई 2021 में पब्लिक हेल्थ रिसर्च, प्रैक्टिस एंड पॉलिसी नाम की पत्रिका में कम्पैनियेट्स और उनके सहयोगियों द्वारा लिखे गए शोध पत्र में बताया गया है कि यह वायरस से होने वाली दहशत में भी दहशत और दहशत का योगदान है। कोविड-19 से अस्पताल में

भर्ती 540,667 वीडियो में टोक्यो से गंभीर प्रभाव और मौत के खतरे की पहचान करने का प्रयास किया गया। उनकी खोज में यह जानकर हैरानी हुई कि मोटापे के बाद चिंता और भय से जुड़े विकार के कारण होने वाली मौत के बाद कोविड-19 से होने वाली मौत का दूसरा सबसे बड़ा जोखिम कारक के रूप में सामने आया।

सरकार को सलाह देने वाले वैज्ञानिक शायद शुरुआत में ही रास्ते से भटक गए। टेस्टिंग और ट्रेसिंग प्रकोप के शुरुआती चरणों में महत्वपूर्ण होते हैं, जब यह एक स्थानीय धारा होती है और मानव समुद्र में विलीन नहीं हुई होती है। यह महामारी के अंत में भी महत्वपूर्ण हो सकता है, जब यह एक छोटे गड्ढे में कम हो जाती है, यानी अगर बीमारी से जुड़ी सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या को अभी भी खत्म करने की जरूरत है। अन्यथा, उस छोटे गड्ढे को अकेला छोड़ा जा सकता है। हमारे देश में तपेदिक जैसी कई बड़ी और अनसुलझी समस्याएं हैं।

इन निरर्थक उपायों की न केवल व्यर्थता बल्कि इन बड़े पैमाने पर सामुदायिक संचरण होने पर इन उपायों की लागतों का क्या होगा? अवसर लागतों का क्या होगा? घनी आबादी वाले हमारे देश में जब संक्रमण का मूल स्रोत मानव समुद्र में विलीन हो चुका था, तब यादृच्छिक रूप से पकड़े गए लोगों में क्वारंटीन के भय, कलंक और उत्पीड़न का क्या होगा?

सबसे पहले, आइए जांच और अनुप ट्रेसिंग की निरर्थकता और उपयोगिता पर विचार करें। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सामुदायिक संचरण शुरू हो जाने के बाद जांच और अनुप (ट्रेसिंग) का कोई मतलब नहीं होता है। टेस्टों की संख्या 10 गुना भी बढ़ा दी गई होती, तब भी हम अपने देश में हुए अधिकांश सकारात्मक मामलों को चूक जाते, जैसा कि नवीनतम सीरोसर्वेक्षण से पता चला है।

दूसरी ओर, आक्रामक जांच, अनुप ट्रेसिंग और क्वारंटीन का मामलों की संख्या बढ़ाने और लोगों में दहशत पैदा करने में बहुत उपयोगिता है। लोगों के गले, आंतों और त्वचा में बहुत सारे वायरस और बैक्टीरिया होते हैं जिनमें से कुछ कोविड-19 की तुलना में कहीं अधिक गंभीर बीमारियां पैदा करते हैं। लेकिन चिकित्सा के इतिहास में कभी भी लोगों को उनके शरीर से अलग किए गए रोग- पैदा करने वाले रोगजनकों के आधार पर मामले के रूप में लेबल नहीं किया गया था, जैसा कि कोविड -19 के लिए किया गया था। मामले बढ़ने के आने वाले डर का फायदा स्वार्थी लोग उठाते हैं और संदिग्ध उपचारों और रोकथामों को बढ़ावा देते हैं, जिनमें से सभी को '"घातक" वायरस के 0.3% के निम्न संक्रमण मृत्यु दर को देखते हुए 99% से अधिक सफलता दर की गारंटी दी जाती है।

लागतों के बारे में क्या? यह अनुमान लगाया गया है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में संपर्क अनुरेखण की लागत 3.6 बिलियन डॉलर थी। भारत की जनसंख्या संयुक्त राज्य अमेरिका की तुलना में तीन गुना है, इसलिए हमारे देश में संपर्क अनुरेखण और क्वारंटीन की अनुमानित लागत लगभग 14 बिलियन डॉलर होगी। जब हमारा सार्वजनिक स्वास्थ्य ढांचा जर्जर है तो क्या हम इस प्रकार के धन का खर्च उठा सकते हैं? अगर हमने इसका इस्तेमाल मध्यम से गंभीर मामलों के प्रबंधन के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य ढांचे को मजबूत करने के लिए किया होता तो दूसरी लहर में हमारी मृत्यु दर अभी भी कम होती।

सार्वजनिक स्वास्थ्य: कॉर्पोरेट अस्पतालों ने फैमिली फिजिशियन को हाशिये पर ला दिया, लेकिन सफलता के लिए ग्लैमर ही काफी नहीं होता

बाइबिल की कहानी डेविड बनाम गोलियथ की तरह कॉर्पोरेट अस्पतालों ने फैमिली फिजिशियन को किनारे कर दिया है, लेकिन आकार, चकाचौंध और ग्लैमर हमेशा कारगर नहीं होते।

गोलियथ एक विशाल फिलिस्तीन योद्धा है, जिसके पास युद्ध के लिए अत्याधुनिक हथियारों से लैस पूरा कवच, तलवार और भाला है। वह असीमित धन संपदा के साथ बल का प्रतीक है। दूसरी ओर, डेविड एक छोटा सा चरवाहा लड़का है, जिसके पास एक लाठी और एक गुलेल है, जिसने पराक्रमी गोलियथ से लड़ने की चुनौती लेने का साहस किया। आने वाले मुकाबले में, सभी को चकित करते हुए, डेविड अपनी फुर्ती, लचीलेपन और अनुकूलन क्षमता के साथ, अपने गुलेल से फेंके गए एक तेज पत्थर से अनाड़ी, लड़खड़ाते हुए गोलियथ को गिरा देता है।

सदियों से लोगों ने माना है कि गोलियथ, अपने आकार और भारी कवच को देखते हुए, इस असमान लड़ाई में लाभप्रद स्थिति में था और गोलियथ पर डेविड की जीत सभी बाधाओं के खिलाफ एक शुद्ध संयोग थी।

हाल ही में, मैल्कम ग्लैडवेल ने प्रकाशित शोध के आधार पर अपनी पुस्तक "'डेविड एंड गोलियथ: अंडरडॉग्स, मिसफिट्स, एंड द आर्ट ऑफ बैटलिंग जायंट्स"' में इस बाइबिल की कहानी की पुनर्व्याख्या की है। ग्लैडवेल इस बात की पुष्टि करते हैं कि हम इस प्रसिद्ध किंवदंती को अक्सर गलत समझते हैं क्योंकि हम गलत समझते हैं कि इस असमान मुकाबले में किसका पलड़ा भारी था। वैज्ञानिक और धार्मिक जांचों ने दाऊद और गोलियथ के बीच संघर्ष के आसपास कई आकर्षक तथ्यों का खुलासा किया है।

एक सहकर्मी- समीक्षा प्राप्त शोध पत्र "'वंशानुगत विशालवाद' - बाइबिल का गोलियथ और उसके भाई", शीर्षक से डियर्ड्रे डोनली और पैट्रिक मॉरिसन द्वारा 2014 में अल्स्टर मेडिकल जर्नल में प्रकाशित किया गया था। इस शोध में मूल हिब्रू धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में गोलियथ के वर्णन और वर्तमान वैज्ञानिक जानकारी के सावधानीपूर्वक अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकाला गया है कि गोलियथ एक्रोमेगाली से पीड़ित था, जो मस्तिष्क के आधार पर पिट्यूटरी ग्रंथि के ट्यूमर के कारण होता है। यह स्थिति वृद्धि हार्मोन के स्राव को बढ़ा देती है जिससे विशालवाद होता है।

ट्यूमर ऑप्टिक तंत्रिका पर भी दबाव डालता है जो आंखों से दिमाग तक दृश्य छवियों को ले जाता है और इससे दोहरी दृष्टि और गंभीर निकट दृष्टिदोष हो सकता है। बाइबिल के वर्णन में यह स्पष्ट है कि गोलियथ अंधा था जहां उसे प्रतियोगिता में हाथ से ले जाना पड़ता था। यह विशाल, धीमा गति से चलने वाला राक्षस अपने भारी कवच से भी दबा हुआ था जो उसकी गतिविधियों को अनाड़ी और धीमा बना देता था। डेविड, हालांकि आकार में गोलियथ का मुकाबला नहीं कर सकता था, लेकिन गति और लचीलेपन के लाभ के साथ उसने अपने गुलेल से सटीक प्रहार करके अपने शक्तिशाली दुश्मन को हरा दिया।

ग्लैडवेल का कहना है कि इस प्राचीन कहानी से सीख बड़े, विशाल संगठनों पर लागू होती है। वही चीजें जो इन संगठनों को दुर्जेय बनाती हैं, जैसे आकार, विशाल संसाधन, अत्याधुनिक तकनीक, अक्सर इन कंपनियों को गोलियथ के भारी कवच की तरह बोझिल कर देती हैं और उनकी दृष्टि को सीमित कर देती हैं, जिससे बड़ी और अप्रत्याशित असफलताएं मिलती हैं। विकास की अवधि के बाद, आकार लाभ से बाधा में बदल जाता है। हितों का टकराव, जो गोलियथ के समय अनुपस्थित था, उन्हें स्वायत्तता से वंचित कर देता है।

इन गतिकी की तुलना हाल के दशकों में चिकित्सा और सार्वजनिक स्वास्थ्य द्वारा प्राप्त की गई विशाल ऊंचाइयों से की जा सकती है। जीनोमिक्स, प्रेसिजन मेडिसिन और बायोटेक्नोलॉजी जैसी चिकित्सा तकनीक में उल्लेखनीय प्रगति ने चिकित्सा को "'विशालकाय"' या "'एक्रोमेगायलस"' ऊंचाइयों में बदल दिया है! प्रौद्योगिकी को बनाए रखने की संबंधित लागतों और चुनौतियों ने व्यक्तिगत अभ्यास को कॉर्पोरेट अस्पतालों को रास्ता दे दिया है, जो चिकित्सा को एक पेशे से बदलकर दवा कंपनियों द्वारा समर्थित बड़े व्यवसाय में बदल रहा है।

चिकित्सा-दवा उद्योग का विशाल आकार और व्यापक दृश्य लोगों के बीच इस वास्तविक उम्मीद को जन्म दे चुका है कि हर बीमारी का इलाज एक गोली से हो सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है, चिकित्सा क्षेत्र में प्रगति से लोगों के स्वास्थ्य और कल्याण में उल्लेखनीय सुधार की आवश्यकता है। लेकिन गोलियथ के मामले में, इस अदृश्य रूप से बढ़ते उद्योग का दृष्टिकोण और विशेषाधिकार प्राप्त हो गया है और कम हो गया है। यह सभी के लिए चिंता और

आत्मनिरीक्षण का विषय होना चाहिए। इस चिकित्सा क्षेत्र के दिग्गजों का पतन मानव जाति के लिए विनाशकारी हो सकता है। दीवार पर स्पष्ट संकेत लिखा हुआ है।

इस चिकित्सा क्षेत्र के गोलियथ की नवीनतम महामारी की प्रतिक्रिया ने इन सीमाओं को सामने ला खड़ा किया। SARS-CoV-2 के रूप में एक चुस्त, छोटे, तेजी से फैलने वाले और अनुकूलनीय शत्रु का सामना करते हुए, इसने अदृश्य शत्रु को जीतने के लिए अनाड़ी और लड़खड़ा कर लड़खड़ा गया। इस दिग्गज के अनाड़ी और अदूरदर्शी कदमों ने दुनिया भर में जीवन और आजीविका को रौंद डाला। लॉकडाउन जैसे लंबे समय तक चलने वाले प्रतिबंधात्मक उपायों ने व्यवसायों को नष्ट कर दिया और समाज को तोड़ दिया।

शुरुआत में भ्रम की स्थिति में अजीब और असंगठित प्रतिक्रिया तो समझी जा सकती थी, लेकिन यह दिग्गज संस्थान जमा होते साक्ष्यों के अनुसार खुद को ढालने में विफल रहा। जब डेटा बता रहा था कि नया वायरस ज्यादातर कमजोर बुजुर्गों या सह-रुग्णताओं वाले लोगों के लिए घातक है, तब भी यह सभी के लिए प्रतिबंधात्मक उपायों पर जोर देता रहा। कई देशों में स्कूल और शैक्षणिक संस्थान बंद कर दिए गए और बंद ही रहे, जबकि सबूत बता रहे थे कि युवाओं और बच्चों के लिए जोखिम न्यूनतम था और दैनिक जीवन के कई जोखिमों जैसे दुर्घटनाओं और अन्य स्थानिक रोगों की तुलना में बहुत कम था।

देविद को बिना किसी प्रभाव के अंधेरे में भाला फेंकने वाले गोलियथ की तरह, कोविड-19 प्रतिक्रिया का मुख्य आधार संपर्क अनुरेखण और क्वारंटीन द्वारा वायरस का पीछा करने पर निर्भर रहा, तब भी जब वायरस समुदायों में चुपचाप फैल गया था और ये संसाधन गहन उपाय कोई खास फर्क नहीं दिखा पाए और महामारी के बाद के चरणों में निरर्थक और महंगे साबित हुए।

पिट्यूटरी ट्यूमर जिस तरह बढ़ता रहता है और ग्रोथ हॉर्मोन का अधिक स्राव करता है, उसी तरह महामारी की प्रतिक्रिया ने सभी उम्र के लोगों और बच्चों के लिए टीकों के विस्तार के माध्यम से और अधिक टेक्नोलॉजी को प्रोत्साहित किया, जबकि यह कम जोखिम में थे। वहीं दूसरी तरफ चुस्त वायरस म्यूटेशन के जरिए खुद को ढालता रहा। ये उन्मादी सामूहिक टीकाकरण अभियान उन देशों में भी चलाए जा रहे थे, जहां सीरोसर्वेक्षणों से पता चला है कि हर तीन में से दो लोग प्राकृतिक संक्रमण से ठीक हो चुके थे। शोध से पता चलता है कि प्राकृतिक संक्रमण मजबूत प्रतिरक्षा प्रदान करता है जबकि टीकों के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता है। आपातकालीन उपयोग प्राधिकरण के तहत आने वाले टीकों के दीर्घकालिक दुष्प्रभाव, यदि कोई हों, तो भी अज्ञात हैं।

इस संकट में, कई लोग चिकित्सा के "'डेविड्स"' को याद कर रहे होंगे, यानी बीते युग के सामान्य चिकित्सक, जिनका स्टेथोस्कोप गुलेल का प्रतीक है। उन्हें आश्चर्य होगा कि क्या ये डेविड अपने लचीले और अनुकूलित दृष्टिकोण के साथ बेहतर प्रदर्शन करते, आरटी-पीसीआर और छाती स्कैन के महंगे "'अत्याधुनिक" कवच और ढेर सारी महंगी और बेकार की पुनर्निर्मित दवाओं के बजाय। उन्हें यह भी आश्चर्य होगा कि क्या एक डेвид ने तेजी से विकसित हो रहे विभिन्न टीकों में से टीका लेने के लिए उन्हें मजबूर करता। विशाल गोलियथ ने वायरस की बेतुकी खोज में आजीविका को रौंदने के अलावा, 99.9% संक्रमित लोगों के जीवित रहने वाली बीमारी के लिए भी यह सब कुछ करता रहा।

इस संकट में, कई लोग चिकित्सा के "'डेविड्स"' को याद कर रहे होंगे, यानी बीते युग के सामान्य चिकित्सक, जिनका स्टेथोस्कोप गुलेल का प्रतीक है। उन्हें आश्चर्य होगा कि क्या ये डेविड अपने लचीले और अनुकूलित दृष्टिकोण के साथ बेहतर प्रदर्शन करते, आरटी-पीसीआर और छाती स्कैन के महंगे "'अत्याधुनिक" कवच और ढेर सारी महंगी और बेकार की पुनर्निर्मित दवाओं के बजाय। उन्हें यह भी आश्चर्य होगा कि क्या डेविड ने उन्हें तेजी से विकसित टीकों की बढ़ती पसंद से टीका लगवाने के लिए मजबूर किया होगा। विशाल गोलियथ ने वायरस की अंधी दौड़ में आजीविका को रौंदने के अलावा एक ऐसी बीमारी के लिए ये सब करना जारी रखा जिसमें वायरस से संक्रमित होने वाले 99.9% लोग जीवित रहते हैं।

विशालकाय और चुस्त वायरस के बीच संघर्ष जारी है, इसलिए यह भविष्यवाणी करना या यह निर्णय लेना अनुचित होगा कि कौन जीतेगा या सही दृष्टिकोण क्या है। इतिहास इसका फैसला करेगा।

सैन्य नेतृत्व से चिकित्सा जगत के नेताओं के लिए सीख

देश में उपेक्षित उष्णकटिबंधीय बीमारियों को नजरअंदाज करना और पश्चिमी देशों के गलत रास्ते पर आँख मूंदकर चलना एक भारी गलती है।

कुर्ट वॉन हैमरस्किन-इक्कॉर्ड, जर्मनी के एक जनरल और एडोल्फ हिटलर और नाजी शासन के लंबे समय से विरोधी थे। उन्होंने सैन्य नेताओं के लिए वर्गीकरण योजना तैयार की थी, "मैं चार प्रकार के नेताओं को अलग करता हूँ। कुछ चतुर, मेहनती, मूर्ख और आलसी होते हैं। आमतौर पर दो विशेषताएं एक साथ होती हैं। कुछ चतुर और मेहनती होते हैं; उनकी जगह जनरल स्टाफ में होती है। कुछ मूर्ख और आलसी होते हैं; वे हर सेना के 90 प्रतिशत होते हैं और नियमित कार्यों के लिए उपयुक्त होते हैं। जो व्यक्ति चतुर और आलसी दोनों है, वह उच्चतम नेतृत्व कर्तव्यों के लिए योग्य है, क्योंकि उसके पास कठिन निर्णय लेने के लिए आवश्यक मानसिक स्पष्टता और तंत्रिका बल होता है। जो मूर्ख और मेहनती दोनों होता है, उससे सावधान रहना चाहिए; उसे कोई जिम्मेदारी नहीं सौंपी जानी चाहिए क्योंकि वह हमेशा केवल नुकसान ही पहुंचाएगा।"

वैश्विक चिकित्सा समुदाय ने SARS-CoV-2 के खिलाफ युद्ध की घोषणा की। संभवतः इसकी लागत और आनुषंगिक क्षति पिछले दो महान् युद्धों के पैमाने तक पहुँच गई है। युद्ध स्तर पर महामारी संचालन के लिए उच्च क्षमता वाले नेतृत्व गुणों की आवश्यकता होती है, जो सैन्य युद्धों के बराबर हों। महामारी के खिलाफ चल रहे युद्ध में रणनीतियों को आकार देने वाले नेतृत्व शैलियों का विश्लेषण करके महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त की जा सकती हैं।

दुर्भाग्य से, महामारी पर वर्तमान युद्ध में बढ़त उन चिकित्सा विचारधारा के नेताओं द्वारा ली गई थी जिनके अनुभव की कमी के कारण उन्होंने कठोर कदम उठाए जिससे भारी मात्रा में संपार्श्विक क्षति हुई। पश्चिम के विशेषज्ञ, जिन्होंने महामारी के खिलाफ वैश्विक युद्ध का नेतृत्व किया, उनके पास युद्ध के अनुभव का अभाव था क्योंकि वे कुछ संचारी रोगों को संभालते हैं। हालांकि वे मुख्यधारा की चिकित्सा सोच पर हावी हैं। उनके द्वारा प्रकाशित चिकित्सा साहित्य को आमतौर पर धर्मग्रंथों के लिए आरक्षित श्रद्धा के साथ पढ़ा जाता है! महामारी के दौरान उनकी कुछ प्रतिष्ठित पत्रिकाओं से फर्जी आंकड़ों पर आधारित शोध को वापस लेने से हमें आश्चर्य होता है कि क्या हम सब पूरे समय झूठे देवताओं की पूजा कर रहे हैं!

इन विशेषज्ञों की उपन्यास SARS-CoV-2 के खतरे की प्रतिक्रिया हमें डॉन क्विक्सोट और उनके सहयोगी सांचो पांजा की क्लासिक कहानी की याद दिलाती है, जो मूढ़ नेतृत्व का प्रतीक है। विशालों को राक्षसों के रूप में समझने के लिए डॉन क्विक्सोट का भ्रम "पवन चक्कियों पर झुकाव" (पवन चाकियों से गति) मुहावरे का जन्म बताता है जिसका अर्थ है काल्पनिक राक्षसों पर हमला करना। प्रबंधन की भाषा में इसका अर्थ उन विद्यार्थियों को बताना है जो महत्वपूर्ण हैं या जिन पर विजय पाना असंभव है। अपने भ्रमों के बावजूद डॉन क्विक्सोट ने पांजा की भक्ति और प्रशंसा जीत ली।

अत्यधिक घातक वायरस के भ्रम ने चिकित्सा जगत के नेतृत्व में दहशत पैदा कर दी। जब नेतृत्व घबराता है, तो आम जनता कई गुना ज्यादा घबराती है। सच कहा जाए तो, तो शुरुआती दौर में सीमित आंकड़ों के कारण ही अत्यधिक घातकता का ये भ्रम पैदा हुआ था। जो भी आंकड़े उपलब्ध थे, वे गंभीर रूप से बीमार अस्पताल के मामलों से थे।

स्वाभाविक रूप से ये आंकड़े मृत्यु दर को अधिक आंकते थे। हाई रेटेड जर्नल लैंसेट ने महामारी के शुरुआती दौर में एक शोधपत्र प्रकाशित किया था जिसमें नोवल वायरस से मृत्यु दर 20% होने का अनुमान लगाया गया था।

हालांकि, एक अच्छा सैन्य नेता युद्ध के मैदान से प्राप्त सूचनाओं की निगरानी करता है ताकि बदलते आयामों के साथ अपने हमले को जांच सके। महामारी में भी जब अध्ययनों से पता चला कि अधिकांश संक्रमण स्पर्शोन्मुख, हल्के और स्व-सीमित होते हैं, जो संक्रमित होते हैं उनमें से 0.3% से भी कम मारे जाते हैं - गलत दिशा में किए गए प्रयास और संसाधन संदिग्ध नियंत्रण नीतियों पर बर्बाद होते रहे।

अधिकांश देशों द्वारा अपनाई गई रणनीति संचरण की श्रृंखला को तोड़ने के लिए प्रतिबंधात्मक उपायों का उपयोग करना था ताकि गति अवरोधक के रूप में कार्य किया जा सके और अति व्यस्त अस्पताल सेवाओं को सांस लेने की जगह मिल सके। सैन्य अभियानों में, इसकी तुलना अस्थायी वापसी से की जा सकती है ताकि सामूहिक हताहतों की जांच की जा सके।

इसी दौरान, टीका निर्माण अभियान तेजी से आगे बढ़ा, मानो आनुवांशिकी के नूतन हथियारों से लैस कोई योद्धा हो। इस रफ्तार ने एक त्वरित विजय का भ्रम खड़ा कर दिया, और शून्य मामलों का एक ऐसा लक्ष्य निर्धारित कर दिया, जो असलियत से परे था।

यह योजना क्यों विफल थी? एक अच्छा सामान्य सभी मुख्य मुद्दों पर युद्ध लड़ता है। यह मौलिक सिद्धांत अनदेखा किया गया और केवल एक मुख्य मुद्दे, अर्थात्, कोविड-19 पर होने वाले सिंगल-माइंडेड हमले में अनदेखा किया गया। जब हलचल-शोलगुल हो जाए, जब युद्ध हारा और जीता जाए, हम शायद इस कठोर सच्चाई के पास आएं कि हमने जीवनों की हानि से अधिक जीवनों को कोविड-19 से बचाए रखा।

पश्चिम के चिकित्सा नेताओं को उनकी नावेटी के लिए क्षमा किया जा सकता है क्योंकि उनमें से अधिकांश ने संचारणशील बीमारियों के साथ वास्तविक युद्ध नहीं लड़ा है, हालांकि हमारे खुद के सलाहकारों की गलतियों और कमिशनों के कार्य एक हिमालयी भूल है। हमारी किसी भी स्थाई बीमारी से बोझ और मृत्यु कोविड-19 से बहुत अधिक हैं। हमें समझ आना चाहिए था कि हमारी आबादी के मामूली आकार और उसकी घनत्व को देखते हुए पश्चिम से "'एक साइज़ फिट्स ऑल"' समाधान काम नहीं करेंगे।

कमरे में सबसे बड़ा सच, जिस पर कोई बात नहीं कर रहा था, वो थी हमारी आबादी में पहले से मौजूद, ऊँचे स्तर की प्रतिरोधक क्षमता. भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद द्वारा जून 2021 में कराए गए चौथे सीरोसर्वेक्षण में देशभर में 67% लोगों में सीरोपॉजिटिविटी पाई गई. मतलब, 93 करोड़ भारतीयों के शरीर में SARS-CoV-2 से लड़ने वाली एंटीबॉडीज़ मौजूद थीं. ये मुख्य रूप से, समाज में व्यापक संक्रमण की वजह से हुआ, क्योंकि इस अध्ययन के दौरान टीकाकरण का दायरा सिर्फ 5% से कम था।

इम्यूनोलॉजी के पुख्ता सिद्धांतों के अनुसार, प्राकृतिक संक्रमण से मिली प्रतिरोधक क्षमता, चाहे वो लक्षणों वाली हो या बिना लक्षणों वाली, किसी भी टीके से ज्यादा मजबूत होती है. ये बात दुनियाभर में चल रहे अध्ययनों से भी बार-बार साबित हो चुकी है. इजरायल के एक अध्ययन ने बताया कि प्राकृतिक संक्रमण से मिली रोग प्रतिरोधक क्षमता, टीकाकरण से मिली क्षमता से 13 गुना ज्यादा मजबूत होती है. हमारे पक्ष में एक और महत्वपूर्ण बात ये थी कि हमारे देश में आई दूसरी लहर, जो पहली लहर से चार गुना से भी ज्यादा विशाल और व्यापक थी, डेल्टा वैरिएंट की वजह से आई थी. इस कोहराम का सामना करने के बाद, हमारी आबादी ने कठिन तरीके से सामूहिक प्रतिरक्षा हासिल कर ली।

विज्ञान के पीछे चलते तो शायद रुक कर ये सोचते कि इतनी बड़ी आबादी में, इतने भारी खर्च और संसाधनों के साथ व्यापक टीकाकरण चलाने का कोई फायदा है भी या नहीं. एक कुशल सेनापति ऐसे हालात में अपनी भारी तोपों को सहेज कर रखता है। हम भी शायद जनादेश में टीकाकरण की लहर दौड़ाने के बजाए, सिर्फ ऊँचे जोखिम वाले समूहों को ही ध्यान से टीका लगाने पर विचार करते। चीन के महान युद्ध रणनीतिकार सूर्य Tzu ने अपनी 'युद्ध कला' में लिखा था, "... जो हथियारों के इस्तेमाल के नुकसान को अच्छी तरह नहीं समझता, वो उनके फायदों को भी पूरी तरह नहीं

समझ सकता।" टीके अब हमारे लिए वो भारी तोपें हैं। हमें उनके नुकसान (जिनके बारे में अभी बहुत कम जानकारी है, खासकर लम्बी अवधि के प्रभाव) और फायदों दोनों को समझना चाहिए, और एक कुशल सेनापति की तरह, जो गोला-बारूद संभाल कर रखता है, उसी तरह विवेकपूर्ण तरीके से इनका इस्तेमाल करना चाहिए।

आखिरकार, अब वो वक्त आ गया है कि हमारे चिकित्सा निर्णयकर्ता और शोधकर्ता आँख मूँदकर पश्चिम की नकल करना बंद कर दें। हमें अपने देश में मौजूद बीमारियों की विशाल विविधता से मिलने वाले शोध के अवसरों का पूरा फायदा उठाना चाहिए। लंदन स्कूल ऑफ ट्रॉपिकल मेडिसिन के संस्थापकों में से एक, सर पैट्रिक मैन्सन ने एक सदी से भी ज्यादा समय पहले कहा था, "गर्म जलवायु क्षेत्रों में काम करने वाले चिकित्सकों को यूरोपीय और अमेरिकी शोध के पहले से खंगाले गए क्षेत्रों में काम करने वालों की तुलना में कहीं ज्यादा नयेपन और रोचकता से भरे मूल शोध और खोज के अवसर मिलते हैं।" महान गुरु के ये शब्द हमारे शोधकर्ताओं को प्रेरणा दें। अगर विकासशील देशों के चिकित्सा शोधकर्ता ट्रॉपिकल मेडिसिन में आगे नहीं आए, तो गरीबी की बड़ी बीमारियों से ज्यादा अमीरी की छोटी-मोटी बीमारियों को तरजीह दी जाएगी। इस अवसर को भुनाने में नाकामी "चिकित्सा साम्राज्यवाद" के युग को और मजबूत कर देगी, जहाँ हथियारों की होड़ की जगह "दवाओं की होड़" खड़ी हो जाएगी। इस होड़ में उपेक्षित उष्णकटिबंधीय बीमारियों से जूझते गरीब देश बहुत पीछे छूट जायेंगे।

रहस्यमय 'बुखार' कोविड से बड़ी चुनौती

फिरोजाबाद में बच्चों के बीच एक बड़ी संख्या में मामले रिपोर्ट किए गए, जो आगरा के पास स्थित है और अपने कांच उद्योग के लिए प्रसिद्ध 6 लाख से अधिक आबादी वाले शहर के रूप में जाना जाता है।

मानसून के बाद, उत्तर प्रदेश (यूपी) में 11 जिले संदिग्ध डेंगू और अन्य बुखारों के प्रभाव में थे। इन जिलों में बुखार के संदेहित कारण थे स्क्रब टाइफस, लेप्टोस्पिरोसिस, जेपेनीज़ इन्सेफेलाइटिस (जेई) जो कि एक वायरस द्वारा होता है, और अन्य वायरल इन्सेफेलाइटिस। भारत के बड़े हिस्सों में स्थानीय मलेरिया या टाइफाइड भी आंकड़ों में जोड़ सकते थे।

यूपी के फिरोजाबाद शहर में बच्चों में यह "रहस्यमय बुखार" के इस प्रकोप का केंद्र था। यह एक 6 लाख से अधिक आबादी वाले आगरा के पास स्थित शहर है जो अपने कांच उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। यहां की जनसंख्या घनत्व प्रति किमी वर्ग में 1000 से अधिक है, जो राष्ट्रीय जनसंख्या घनत्व के दोगुना से अधिक है। शहर राष्ट्रीय राजमार्ग पर है जिससे यह गुजरता हुआ परिवहन वाहनों के लिए एक महत्वपूर्ण ठहराव स्थल बनाता है। जिला में एक बड़ी ग्रामीण क्षेत्र शामिल है जहां लोग रोज़गार की तलाश में ग्रामीण-शहरी चलन में हैं। ये सभी इस मध्यस्थ से राज्य के अन्य हिस्सों तक बुखारी बीमारियों के प्रसार के लिए एक आदर्श वातावरण बनाते हैं।

उस क्षेत्र में बुखारी बीमारियों की एक तेज बढ़ोतरी हुई। उससे भ्रम और अराजकता फैली। कई रिपोर्ट्स आईं कि लोग पूरे गाँव से भाग रहे थे क्योंकि बहुत से, ज्यादातर बच्चे और युवा, '"रहस्यमय बुखार"' से मर रहे थे।

मीडिया रिपोर्ट्स के अनुसार फिरोजाबाद जिले में हजारों लोग बुखार के कारण घर पर और अस्पताल में बिस्तर पर पड़े थे। एक छोटे समय में 71 मौतें रिपोर्ट हुईं, जिसमें, दुर्भाग्य से, 52 बच्चों की थी। केवल 185 सैंपल्स की जांच की गई थी, जिसमें 73 डेंगू के लिए पॉजिटिव, 28 स्क्रब टाइफस के लिए और एक जेपेनीज़ इन्सेफेलाइटिस के लिए था।

अठारहवीं सदी में, जब फ्रांस की रानी मैरी-एंटोनेट को बताया गया कि उनके देश की प्रजा के पास खाने के लिए रोटी नहीं है, तो उन्होंने कथित तौर पर नाक ऊंची करके कहा था, "'क्विल्स मैंजेंट डे ला ब्रियोचे"-"उन्हें केक खाने दो।'" इस असंवेदनशील टिप्पणी के बाद, रानी एक अलौकिक राजशाही की घृणित प्रतीक बन गईं, जो गरीबी और भुखमरी में जकड़े अपनी प्रजा के हालात से बेखबर थीं, जबकि खुद ऐशो-आराम की जिंदगी जीती थीं।

हम स्वास्थ्य नीति निर्माताओं के बीच समान लोकाचार का अनुभव कर रहे हैं। यहां हम देश के सबसे बड़े राज्यों में से एक में थे, "रहस्यमय बुखार" की चपेट में थे, जो ज्यादातर बच्चों और युवाओं को मार रहा था और हमारे सभी संसाधनों को कोविद -19 के लिए बड़े पैमाने पर टीकाकरण में तैनात किया गया था, जो शायद ही कभी बच्चों को मारता है और युवा लोग और बाल चिकित्सा तीसरी लहर के लिए तेजी से तैयारी कर रहे हैं। विडंबना यह है कि बच्चों के बीच कोविड-19 के टीके का परीक्षण अपवित्र जल्दबाजी के साथ किया जा रहा था। बच्चों को "घातक" वायरस से बचाने के लिए कथित तौर पर स्कूल बंद रहे। माता-पिता के बीच घबराहट इस हद तक बनी रही कि कई लोग स्कूल जाने से पहले अपने बच्चों के लिए टीका लगवाने के लिए दौड़ पड़े।

यूपी स्वास्थ्य अधिकारी ने एक बयान में इस सोच की पुष्टि की कि इस "'रहस्यमय बीमारी"' के बढ़ते मामलों के साथ स्थिति कोविड जैसी बन रही थी। कितनी ही अनाड़ी तुलना! इस "'रहस्यमय बुखार"' से बच्चों और युवाओं में इतनी मौतें होने के बावजूद, इस "'रहस्यमय बीमारी"' की पहचान के लिए मात्र एक महीने बाद 185 सैंपल्स की जांच की गई थी, जबकि कोविड-19 की पहचान के लिए लाखों RT-PCR टेस्ट हर दिन किए जाते थे जो असंवेदनशील लोगों पर होते थे, जवान और बुढ़े।

मानसून के बाद, डेंगू हमारे देश में वर्षों से एक प्रमुख सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या है। यह बच्चों और युवाओं में भर्ती और मौत की प्रमुख वजह है। मौत की दर गंभीरता और जल्दी से निदान और प्रबंधन की पहुंच पर निर्भर कर सकती है, जो 2% से 20% तक हो सकती है। ड्रेडेड डेंगू हेमोरेजिक फीवर में प्लेटलेट्स में गंभीर गिरावट और रक्तस्राव के साथ भी जानलेवा हो सकता है।

डेंगू का वायरस एडीज मच्छर के काटने से फैलता है, जो कृत्रिम जलस्रोतों जैसे टैंकों, गमलों और गटरों में पनपता है। ये मच्छर, जिन्हें टाइगर मच्छर भी कहा जाता है, दिन के समय काटते हैं। इस वायरस के चार अलग-अलग रूप (सीरोटाइप) होते हैं और किसी एक रूप से पहले का संक्रमण दूसरे रूप से होने वाले संक्रमण से बचाव नहीं करता है - बल्कि, विभिन्न रूपों से क्रमिक संक्रमण व्यक्ति को खतरनाक डेंगू रक्तस्रावी सिंड्रोम के प्रति अधिक संवेदनशील बना देता है।

इस "रहस्यमय बीमारी" के संभावित कारणों में से दूसरा संदिग्ध स्क्रब टाइफस निकला, जिसके 185 जांचे गए नमूनों में से 28 पॉजिटिव पाए गए। ये बीमारी रिकेट्सिया नाम के एक सूक्ष्म जीवाणु की वजह से होती है। इसका नाम हॉवर्ड रिकेट्स के सम्मान में रखा गया, जो अमेरिका के एक रोग विज्ञानी थे और इसी बीमारी की खोज के बाद इसकी चपेट में आने से उनकी मृत्यु हो गई थी। स्क्रब टाइफस घास के मैदानों में पनपने वाले व माइट्स नाम के सूक्ष्म जीवों के काटने से फैलता है। मानसून के बाद ये घास के "माइट द्वीप" और फैल जाते हैं। प्रकृति में माइट्स और कृन्तकों के बीच संक्रमण का ये चक्र चलता रहता है। घास वाले इलाकों में खेलने वाले बच्चे और कैंपर अक्सर इसके आकस्मिक शिकार हो जाते हैं। स्क्रब टाइफस का इलाज टेट्रासाइक्लिन जैसी एंटीबायोटिक दवाओं से किया जाता है। अगर शुरुआती दौर में ही इलाज मिल जाए तो मृत्यु दर 1।6% होती है। लेकिन इलाज न मिलने पर ये दर 30-35% तक पहुंच सकती है।

जापानी इंसेफेलाइटिस एक वायरल संक्रमण है जो केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को प्रभावित कर सकता है। ये बीमारी कूलेक्स मच्छरों के काटने से फैलती है, जो धान के खेतों में पनपते हैं। इसका प्राकृतिक संक्रमण चक्र मच्छरों और सुअरों या मवेशियों जैसे अन्य जानवरों और पक्षियों तथा मुर्गी पालन के बीच चलता रहता है। ये पशु-पक्षी मेजबान खुद बीमार नहीं पड़ते (हालांकि घोड़ों को छोड़कर), लेकिन ये वायरस के लिए "एम्प्लिफायर होस्ट" की तरह काम करते हैं, यानी उनमें वायरस का तेजी से गुणन होता है। ज्यादातर मामलों में ये संक्रमण बिना लक्षण वाला होता है, लेकिन बच्चों और युवा वयस्कों में ये जानलेवा हो सकता है, जिसकी मृत्यु दर 20% से 40% के बीच होती है। इस बीमारी से बचने के

लिए टीका मौजूद है, लेकिन कोविड-19 के टीके के जितने जोर-शोर से प्रचार किया गया, उतना इसका प्रचार नहीं किया जाता।

हमारे देश के लिए मलेरिया और टाइफाइड जैसी अन्य बीमारियां भी अधूरे एजेंडे की तरह हैं। मलेरिया भले ही इलाज योग्य है, लेकिन कुछ मामलों में ये तेजी से गंभीर हो सकती है, जहां इलाज के बावजूद मृत्यु दर 20% तक पहुंच सकती है। वहीं टाइफाइड का इलाज कराने पर मृत्यु दर 1% से 4% के बीच होती है, जबकि इलाज न कराने पर ये दर 10% से 30% तक जा सकती है। इन बीमारियों का प्रकोप सबसे ज्यादा 5 से 19 साल के बच्चों और युवाओं में देखने को मिलता है।

संभावित कारणों की लिस्ट में लेप्टोस्पायरोसिस का नाम भी शामिल है। ये भी एक ऐसा संक्रमण है जो जानवरों के मूत्र से दूषित गंदे पानी से फैलता है। ये जानवर लेप्टोस्पायरोसिस पैदा करने वाले बैक्टीरियल स्पाइरोकीट्स नाम के सूक्ष्मजीवों को अपने शरीर में रखते हैं। पेनिसिलिन जैसी एंटीबायोटिक दवाओं से इसका इलाज किया जा सकता है, लेकिन मृत्यु दर 5% से 30% तक जा सकती है, जो जांच और इलाज की सुविधाओं पर निर्भर करती है। मानसून के बाद जलभराव होने पर ये बीमारी ज्यादा फैलती है, क्योंकि लोग इस दूषित पानी से होकर गुजरते हैं और बैक्टीरिया त्वचा की खरोंच या कट के रास्ते शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

उपचार न किए गए कोविड-19 की मृत्यु दर, पूरे विश्व में सभी आयु समूहों को मिलाकर, 0।3% है और भारत में यह 0.1% से भी कम है. बच्चों और युवा वयस्कों में तो मृत्यु दर 0.05% से भी काफी कम है. संक्रमण के प्राकृतिक प्रसार में इतनी कम मृत्यु दर के साथ, किसी भी उपचार या बचाव के तरीके के प्रभाव का आकलन करना वाकई बहुत मुश्किल है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में, विज्ञान और कला दोनों का मिश्रण आवश्यक है। इसका मतलब यह है कि सीमित फॉर्मूलेशन को खाली करने के लिए जनता के स्वास्थ्य पर भारी बोझ डाला जाना चाहिए। ये बोझ मृत्यु दर और बीमारी से घटने वाले जीवन के वर्षों से तय होता है। अनोखे अनोखे आँकड़ों से ये सासा हो जाता है कि उत्तर प्रदेश के आँगन में तबाही मचाने वाले "रहस्यमय बुखार" के सभी लक्षण, मृत्यु दर और उसके घटने वाले जीवन के अंतिम वर्ष में कहीं अधिक विशेषताएँ हैं, क्योंकि ये उल्लू मुख्य रूप से बच्चे और युवा प्रभावित होते हैं।

ऐसे हालात में लोगों को कोविड-19 के लिए व्यापक टीकाकरण मुहैया कराना तो मानो उन्हें ""रोटी नहीं तो केक खा लो"" जैसी सलाह देने जैसा है! जैसा कि हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के जाने-माने महामारी विज्ञानी प्रोफेसर मार्टिन कुल्डॉर्फ ने महामारी के दौरान कुप्रबंधन पर कहा था, "हमें सार्वजनिक स्वास्थ्य के मूलभूत सिद्धांतों पर वापस जाना होगा, जिन्हें एक साल पहले दरकिनार कर दिया गया था। यह सिर्फ एक बीमारी के बारे में नहीं है, सार्वजनिक स्वास्थ्य का मतलब हर उस बीमारी से है जिसका सामना हम कर रहे हैं, और साथ ही उससे होने वाले सभी अप्रत्यक्ष नुकसानों से भी है।"

दुर्भाग्य से, महामारी के दौरान "विज्ञान के पीछे चलना (विज्ञान का अनुसरण करना)" सिर्फ जुमलेबाजी साबित हुआ। ब्रिटिश मेडिकल जर्नल में एक संस्करण प्रकाशित हुआ, "कोविड-19: राजनीति, भ्रष्टाचार और विज्ञान का दमन" वैज्ञानिक सलाहकारों और सरकारी नियुक्तियों के लिए बहुत बड़ी भूमिका होती है। उनके हितधारकों और बैंक शेयरों पर टिके हो सकते हैं। लेकिन जनता के प्रति उनका एक उच्च दायित्व और कर्तव्य है। विज्ञान एक सार्वजनिक हित है...दिया जाता है, तो लोग मरते हैं।""

अगली महामारी के लिए तैयारी: क्रिकेट से सीखें।

तेज़ गेंदबाज़ी के धोखे: कमाल कर दे गली के गब्बर को भी! ऐसे ही, SARS-CoV-2 का कहर पश्चिम के मैदानों पर ज़्यादा बरपा हुआ, जहां की बूढ़ी और मोटी आबादी, जिंदगी के अस्वस्थ खेल खेलती थी, वो आसान शिकार बन गई।

महामारी से लड़ाई युद्ध की तरह लड़ी जाती है। युद्ध के लिए तैयारी में बहुत कुछ शामिल होता है। इसका अधिकांश पीछे के पर्दे के पीछे और अधोरोम रहता है। एक पुरानी कथनी, '"जितना अधिक आप शांति में पसीना बहाते हैं, युद्ध में उतना ही कम खून बहाते हैं,'" इसे सारांशित करती है। कोई इस अस्वाभाविक तैयारी के बारे में कैसे सोच सकता है?

इतिहास के सबसे महान सैन्य रणनीतिकारों में से एक, नेपोलियन को वाटरलू में ड्यूक ऑफ वेलिंगटन ने हराया था, जिससे यूरोपीय इतिहास के नेपोलियन युग का अंत हो गया। इस ऐतिहासिक जीत के लिए क्या तैयारियां की गईं?

ड्यूक ने कहा, "वाटरलू की लड़ाई ईटन के खेल के मैदानों पर जीती गई थी।" ड्यूक एक शौकीन क्रिकेट खिलाड़ी, ईटन कॉलेज का पूर्व छात्र और लड़ाई में ब्रिटिश और मित्र देशों की सेनाओं के प्रमुख कमांडर थे। जाहिरा तौर पर, लड़ाई के लिए तैयार होना कोई मामूली बात नहीं है!

अगली महामारी के लिए तैयार होने के लिए, दुनिया ड्यूक ऑफ वेलिंगटन की तरह क्रिकेट से रणनीति सीख सकती है। हम जीत से ज्यादा असफलता से सीखते हैं। अगली आपदा की तैयारी में मदद के लिए वर्तमान महामारी के दौरान की गई रणनीतिक त्रुटियों से सबक सीखा जा सकता है।

जैसे ही बल्लेबाज झुक जाते हैं और गेंद से अपनी नजरें हटा लेते हैं, एक नया गेंदबाज बल्लेबाजी करने वाली टीम को बैकफुट पर धकेल देता है और बल्लेबाजी क्रम को तहस-नहस कर देता है। दुनिया घबरा गई क्योंकि नए कोरोनोवायरस ने भी ग्रह पर तबाही मचाई। तबाही और अस्थिरता, समाज को तोड़ने और अर्थव्यवस्था को तबाह

करने के बीच अभूतपूर्व कार्रवाई की गई। प्रमुख चिकित्सा सर्वसम्मति के नेताओं, कप्तानों ने ध्यान खो दिया। अंपायरों की कुछ कमज़ोर आवाज़ें जिन्होंने चिंता व्यक्त की थी कि ऐसे कार्य गैरकानूनी थे और मानवाधिकारों का उल्लंघन था, उनकी जल्दबाजी और अहंकार में उनके द्वारा उपेक्षा की गई थी। चीन, जो किसी भी तरह से क्रिकेट नहीं खेलता है, ने एक भी जिला बंद कर दिया, जबकि अन्य देशों ने तुरंत राज्यव्यापी तालाबंदी लागू कर दी, जिससे गरीबों और वंचितों को कष्टदायी परिस्थितियों में धकेल दिया गया। अधिकांश अन्य देशों ने भी क्रिकेट खेलना छोड़ दिया।

महामारी के कमांडर अन्य देशों द्वारा बनाई गई पिचों को समझने में असमर्थ थे। यहां तक कि अपनी गति और उग्रता से भी, क्रिकेट गेंदबाज हर पिच को एक ही तरह से प्रभावित नहीं करते हैं। वे इंग्लैंड के विकेटों पर घातक और तेज़ हो सकते हैं, लेकिन धीमी भारतीय सतहों पर अधिक कोमल हो सकते हैं।

वायरस को विभिन्न स्थानों पर विभिन्न पिचों का भी सामना करना पड़ा। तेज पिचें औसत दर्जे के गेंदबाजों को भी घातक बनाने की ताकत रखती हैं। इसी तरह, नया कोरोनोवायरस पश्चिमी क्षेत्रों में घातक था लेकिन एशिया और अफ्रीका में काफी कम था। कई देशों के कप्तानों ने अपने देश के लिए अनूठी तकनीकें विकसित की होंगी। बल्कि, उन्होंने गंभीर, प्रतिबंधित, "एक आकार-सभी के लिए उपयुक्त" नीतियां अपनाईं।

पश्चिम में बुजुर्ग आबादी नोवेल वायरस से संक्रमित थी, विशेषकर नर्सिंग संस्थानों के कमजोर निवासी। मरने वालों का एक महत्वपूर्ण प्रतिशत अस्सी के दशक में सह-रुग्ण व्यक्ति थे। इस कमज़ोर आबादी की सुरक्षा के लिए योजना की कमी के कारण गंभीर बीमारियाँ और मौतें हुईं, जिससे स्वास्थ्य प्रणालियाँ चरमरा गईं और दुनिया भर में दहशत बढ़ गई, जबकि रणनीति के कर्णधारों ने गेंद से अपनी आँखें मूँद लीं। इन पिचों से मृत्यु दर का उपयोग सांख्यिकीय मॉडल के लिए डेटा के रूप में किया जाता है जो विश्वव्यापी आपदा की भविष्यवाणी करता है। इस अराजकता के बीच, निर्णय निर्माताओं ने महत्वपूर्ण विकल्प चुने जिससे लाखों लोगों के जीवन और आजीविका के साधनों पर प्रभाव पड़ा।

वृद्ध होने के अलावा, पश्चिम के लोगों में मोटापे की संभावना पूर्व के लोगों की तुलना में तीन गुना अधिक है। गंभीर बीमारी और मृत्यु दर के जोखिमों में से एक मोटापा है।

एशियाई और अफ्रीकी देशों में युवा और पतली आबादी इस वायरस से कम प्रभावित हुई। "वर्ल्डोमीटर" स्कोरकार्ड देखते समय यह असमानता तुरंत स्पष्ट हो जाती है। कुछ विसंगतियाँ अधिक जानकारी प्रदान करती हैं। जापान की जनसंख्या सबसे बुजुर्ग लोगों में से एक है। विडंबना यह है कि मृत्यु दर बहुत कम है। जापान में जनसंख्या पश्चिम की तुलना में काफी कम है; जापान में अधिक वजन वाले व्यक्तियों का प्रतिशत 25% है, लेकिन यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका में यह लगभग 60% है। यह कारण हो सकता है. ब्राजील दूसरा विरोधाभास है. युवा आबादी के साथ, इसकी अर्थव्यवस्था तेजी से बढ़ती जा रही है। यह अभी भी काफी गंभीर है और महामारी लोगों की जान ले रही है। ब्राजील में लगभग 60% अधिक वजन वाली आबादी है। यह स्पष्ट होता जा रहा है कि मोटापा उम्र से भी बड़ा ख़तरा है।

इन रुझानों को नजरअंदाज करते हुए, अधिकांश देशों के नेता और निर्णय-निर्माता अप्रत्याशित रूप से बदलते मैदानों पर खेलने के बाद अचानक निर्णय लेने वाले अनाड़ी कप्तान बन गए। देशों, विशेष रूप से अफ़्रीकी और एशियाई महाद्वीपों के देशों ने, जनसंख्या प्रोफाइल और जनसांख्यिकी सहित स्थानीय परिस्थितियों का मूल्यांकन करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया।

अधिकांश स्थानिक बीमारियों के लिए, एशिया की दुखती रग क्षेत्ररक्षकों की कमी, अनुचित क्षेत्र स्थान और स्कोरबोर्ड है - यानी, एक अपर्याप्त रोग निगरानी प्रणाली। शहरी क्षेत्रों में अधिकांश अल्प बुनियादी ढाँचे और संसाधन मौजूद हैं। ये दोष रेखाएं भारत में दूसरी लहर से उजागर हुईं। वायरस की घातकता के बजाय इन प्रतिबंधों के कारण कई टाली जा सकने वाली मौतें हुईं (भारत में कोविड-19 से संक्रमण मृत्यु दर 0. एल% है, जबकि दुनिया भर में यह 0.3% के स्तर पर है)।

हम भविष्य में महामारी के लिए कैसे तैयार हों? वर्तमान महामारी से पता चलता है कि, पुरानी बीमारियों की तरह, मोटापे जैसी जीवनशैली में परिवर्तन, तीव्र संचारी रोगों की गंभीरता और मृत्यु दर को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह महामारी एशिया और अफ्रीका के साथ-साथ पश्चिम में तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं के लिए एक

चेतावनी है, जहां अस्वास्थ्यकर जीवनशैली तेजी से बढ़ रही है। ये तत्व क्षेत्र को नुकसान पहुंचाते हैं और भविष्य में नए संक्रमण और महामारी उत्पन्न होने पर तबाही मचा सकते हैं। जैसा कि स्पष्ट हो रहा है, टीका विकास एक समय लेने वाली प्रक्रिया है और 100% सुरक्षा की गारंटी नहीं देता है। खराब पिचों और अभ्यास की कमी के कारण हेलमेट और बॉडी प्रोटेक्टर के साथ भी खिलाड़ी चोटिल हो सकते हैं।

भारत और अन्य देशों को फील्ड प्लेसमेंट में बेहतर प्रदर्शन करने की जरूरत है। दीर्घकालिक योजना में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच सार्वजनिक स्वास्थ्य बुनियादी ढांचे में अंतर को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए राज्य से अधिक धन की आवश्यकता है। इसके लिए एक मजबूत स्कोरबोर्ड, या बीमारियों पर नज़र रखने और निगरानी करने की एक विधि की भी आवश्यकता होती है। हम मलेरिया, जापानी एन्सेफलाइटिस, टाइफाइड, डेंगू और स्क्रब टाइफस सहित अपनी स्थानिक संचारी बीमारियों पर निगरानी और निगरानी के कोविड-19 मॉडल को लागू कर सकते हैं। स्वास्थ्य देखभाल के जिन कॉर्पोरेट और निजी बीमा मॉडलों को अपनाया जा रहा है, उनमें हितधारकों की बढ़ती संख्या शामिल है, जिनमें से प्रत्येक अपने-अपने निहित स्वार्थों के साथ शामिल है। क्रिकेट एक समय एक महान खेल था, लेकिन बड़े दांव और मैच फिक्सिंग की घटनाओं ने इसकी शोभा कम कर दी। हमें इस महान पेशे को हितों के बढ़ते टकराव और इसी तरह के हश्र से बचाने की जरूरत है।

बेशक, बेसबॉल के अलावा, अमेरिकियों को थोड़ा क्रिकेट भी खेलना चाहिए। बेसबॉल में ऐसी कोई पिच नहीं है जो संभवतः इस वैश्विक महामारी के दौरान अमेरिकी बौद्धिक अभिजात वर्ग के संकीर्ण दृष्टिकोण को दर्शा सके।

सार्वजनिक स्वास्थ्य: डॉक्टरों को फार्मा और टेक कंपनियों के खिलाफ हार

चिकित्सा के क्षेत्र को व्यावसायिक और राजनीतिक हितों ने ग्रहण लगा दिया है, और चिकित्सक की स्वायत्तता को गंभीर रूप से कम कर दिया गया है।

दो तलवारबाज, दार्शनिक और रणनीतिकार मियामोतो मुसाशी, जिनका जन्म 16वीं सदी के जापान में हुआ था, ने "दो स्वर्ग एक" या "एक विद्यालय - दो तलवारें," नीता!ची रयु" नामक एक विधि को सिद्ध किया। यह पाठ्यक्रम है इस प्रसिद्ध समुराई ने जिस स्कूल का निर्माण किया, वह लंबी और छोटी दोनों तरह की तलवारों के उचित उपयोग पर जोर देता है। जब हाथ से हाथ मिलाकर या छोटे क्षेत्र में लड़ाई की जाती है, तो छोटी या साथी तलवार अच्छी तरह से काम करती है हर परिस्थिति।

इस तुलना से, स्टेथोस्कोप और चिकित्सक की नैदानिक विशेषज्ञता बीमारी के खिलाफ लड़ाई में चिकित्सक की छोटी या साथी तलवार का प्रतिनिधित्व करती है। लंबी तलवार महंगी, अत्याधुनिक अनुसंधान और चिकित्सा प्रौद्योगिकी अनुप्रयोगों के बराबर है। सभी अच्छे इरादों के साथ, ऐसा लगता है कि छोटी तलवार की कीमत पर लंबी तलवार का उपयोग करने से मरीज़ अलग-थलग पड़ रहे हैं और स्वास्थ्य देखभाल की लागत बढ़ रही है।

मेडिकल स्कूल से निकले युवा डॉक्टर लंबे, चमकदार ब्लेड या तकनीक से रोमांचित हैं। यह सच है कि आधुनिक चिकित्सा ने कई आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ हासिल की हैं। लेकिन अधिकांश मानवीय बीमारियों के लिए, चिकित्सा कला के साथ संयुक्त छोटी तलवार बेहतर परिणाम देती है और डॉक्टर-रोगी के बंधन को बढ़ाती है। इसकी कीमत भी उचित है।

वर्षों पहले, जब लंबी तलवार भी बहुत लंबी नहीं थी, तब वास्तविकता सामने आई। मैं एक युवा सैन्य डॉक्टर था जिसे सुदूर पूर्वोत्तर भारतीय फील्ड स्टेशन पर भेजा गया था। मैंने अपने अधिकांश रोगियों को सुबह देखा, मुख्य रूप से युवा सैनिकों को, और फिर मैं विशेषज्ञों से "दिलचस्प मामलों" के बारे में सुनने के लिए निकटतम सैन्य अस्पताल की ओर दौड़ पड़ा। एक बार जब मैं पेशेवर कपड़े पहनकर एक सुखद शाम की सैर के लिए निकला तो मैंने अपने कार्यालय के सामने एक कतार देखी। मैंने पंक्ति में सबसे पीछे बैठे व्यक्ति से पूछा क्यों। कथित तौर पर "डॉक्टर साहब" नए मरीजों को स्वीकार कर रहे हैं। इसने मुझे आश्चर्यचकित कर दिया. डॉक्टर सुबह आता है, शाम को नहीं, मैंने उसे सूचित किया। उन्होंने मुझसे फुसफुसाकर कहा कि जो डॉक्टर सुबह आता है वह बुरा है, और जो डॉक्टर शाम को आता है वह अच्छा है।

अब तक, मैं इतना उत्सुक हो गया था कि मैं खिड़की के पास गया और अंदर झाँका। यह एक अपमानजनक घटना थी. मरीज़ों की देखभाल करते समय, मेरे चिकित्सा सहायक उनसे उन्हीं की भाषा में बात करते थे। वह उन्हें समझा रहा था कि मेरे नोट्स अपठनीय क्यों थे। चिकित्सा सहायक ने रिश्तेदारों और परिवार से दूर अलग-थलग स्थान पर एक साथी, दार्शनिक और मार्गदर्शक के रूप में कार्य किया। उनकी "छोटी तलवार" मेरी तकनीकी विशेषज्ञता या "लंबी तलवार" से अधिक शक्तिशाली थी। सुबह मेरी लंबी तलवार के इस्तेमाल को संतुलित करने के लिए उसने शाम को छोटी तलवार का इस्तेमाल किया। मुझे यह समझ में आ गया कि "लंबी तलवार" की संभावनाओं को समझने की जल्दबाजी में मुझे एक आदर्श चिकित्सक बनने के लिए छोटी तलवार का उपयोग करना नहीं छोड़ना चाहिए।

आज की दुनिया में, "घाघ डॉक्टर" एक विसंगति है। यह चिकित्सक समझता है कि संबंध बनाने के लिए मानवीय संबंध बनाना आवश्यक है, जो बदले में अनुपालन और इलाज को बढ़ावा देता है। इस प्रकार, वह स्थितियों का निदान करने और प्रत्येक रोगी और उनके परिवार के लिए व्यक्तिगत उपचार डिजाइन करने में समान रूप से कुशल है।

इतिहास लेना एक कला थी जिससे संचार क्षमताओं में सुधार हुआ। इससे और मरीज की व्यक्तिगत जांच से डॉक्टर-मरीज का संबंध मजबूत हुआ। चिकित्सा एक रोगी-केंद्रित पेशा था।

तकनीकी प्रगति के कारण लंबी तलवार की लंबाई बढ़ती जा रही है, जिससे यह असहनीय हो गई है। जबकि तकनीकी प्रगति के कारण वास्तविक समय पर निदान अब संभव है, आधुनिक चिकित्सक अनिवार्य रूप से रोगी के साथ संपर्क खोने के परिणामस्वरूप डॉक्टर-रोगी संबंध प्रभावित हो रहा है।

युद्ध कौशल की तरह, चिकित्सा भी एक कला हुआ करती थी। दोनों ही क्षेत्रों में, निकटता और सूक्ष्मता का बोलबाला था। जैसे युद्ध में छोटी तलवारें चलती थीं, वैसे ही रोगों से लड़ने के लिए भी वैद्यों के पास सीमित औजार होते थे। वे रोगी की नब्ज टटोलते, आँखों में झाँकते और जड़ी-बूटियों का सहारा लेकर रोग का मुकाबला करते थे।

युद्ध-कला, कभी सूरमाओं की निपुणता और सूक्ष्म चालों का खेल हुआ करती थी। मगर समय के थपेड़ों के साथ, यह कला विज्ञान में बदल गई। विज्ञान ने तोपों, रासायनिक हथियारों और जानलेवा कीटाणुओं को जन्म दिया। युद्ध निर्मम और कलाहीन हो गया, जहाँ सिर्फ तबाही का बोलबाला था। अब आम लोगों का खून ज्यादा बहाया जाता है, सैनिकों का कम। हिरोशिमा और नागासाकी का परमाणु विस्फोट, जिसने दूसरे विश्वयुद्ध को खत्म किया, इस बात का सबूत है कि जब "लंबी तलवार" यानी परमाणु हथियार बेकाबू हो जाते हैं, तो कैसा कहर बरपा सकते हैं। मानवता को विनाश

से बचाने के लिए "छोटी तलवार" यानी युद्ध-कौशल की समझदारी से प्रयोग ज़रूरी है। पर ये कहना आसान है, करना मुश्किल। हथियारों की होड़ ने "छोटी" और "लंबी" तलवार को एक कर दिया है, वो भी दामोक्लीज़ की तलवार की तरह जो हमारे सिरों पर लटकी हुई है, मानो धरती पर जीवन को ख़त्म करने की धमकी दे रही हो। शक्तिशाली और अदृश्य ताकतों ने साधारण सैनिक की स्वायत्तता को छीन लिया है। अब उसके पास तलवार चुनने का विकल्प भी नहीं बचा। व्यापारिक स्वार्थ, राजनीतिक दबाव और हथियारों का व्यापार - ये सब मिलकर युद्ध-कला को मिटा चुके हैं।

चिकित्सा भी आज अपनी पहचान के संकट से जूझ रही है। जैसा कि सिद्धार्थ मुखर्जी अपनी पुस्तक "द लॉज़ ऑफ मेडिसिन - फील्ड नोट्स फ्रॉम एन अनसर्टेन साइंस" में कहते हैं, यह सबसे प्राचीन कलाओं में से एक है, लेकिन विज्ञान के क्षेत्र में सबसे नई है। कठोर विज्ञानों की तुलना में अधिक कोमल, संभावनाओं और वादों से भरपूर। परन्तु, अफसोस की बात है कि यह भी तेजी से व्यापारीकरण का शिकार हो रही है। युद्ध की तरह ही, चिकित्सा में भी व्यावसायिक हितों, राजनीतिक प्रभाव और दवा कंपनियों का बोलबाला बढ़ता जा रहा है, जिससे डॉक्टरों की स्वायत्तता लगातार कम हो रही है। बीमारियों और महामारियों को विंस्टन चर्चिल की उस उक्ति का पालन करने के अवसर के रूप में देखा जाता है, "अच्छे संकट को कभी व्यर्थ न जाने दें।"

दुनिया आज दोहरी चुनौती का सामना कर रही है - हथियारों की होड़ और दवाओं की दौड़। दोनों को ही रेस के ब्रेकर और ट्रैफिक सिग्नल की ज़रूरत है। मानवता को हिरोशिमा और नागासाकी जैसे परमाणु विस्फोट के बाद पछताने से बेहतर है कि पहले ही आत्म-चिंतन कर ले। उसी विस्फोट ने अल्बर्ट आइंस्टीन को परमाणु अनुसंधान पर अपने सुझावों पर पछतावा करने के लिए मजबूर कर दिया था। उन्होंने दुखी स्वर में कहा था, "हाय धिक्कार है मुझ पर!"

चिकित्सा जगत आज एक पेचीदा दोराहे पर खड़ा है। टेक्नोलॉजी ने जो रफ्तार पकड़ी है, वो मानो चिकित्सकों को भी पीछे छोड़ रही है। ये अब "डॉक्टर्स डिलेमा" जैसा सरल संकट नहीं रहा, जैसा चिकित्सा के कला होने के दौर में हुआ करता था। डॉक्टरों की स्वायत्तता और निर्णय लेने का अधिकार तो बहुत पहले ही कम हो चुका है। पहले से ही जटिल चिकित्सा का क्षेत्र अब इतना जटिल हो गया है कि समझना भी मुश्किल हो गया है। नई जानकारियों का अंबार लगातार बढ़ रहा है। ये शोर इतना तेज है कि जटिल फैसले लेना मुश्किल, बल्कि लगभग नामुमकिन सा हो गया है। ये बन चुका है "लोगों का संकट।" अब मरीज भी उलझन में हैं कि किस डॉक्टर पर भरोसा करें, कौन सी तकनीक अपनाएं।

वर्तमान mRNA वैक्सीन टेक्नोलॉजी वाकई उल्लेखनीय है। रोगों और महामारियों से लड़ाई में ये गेम चेंजर साबित हो सकती है। पर हर ताकतवर तकनीक की तरह, इसे सावधानी से इस्तेमाल करना चाहिए। ख़बरों के मुताबिक, इस तकनीक से बने कुछ टीकों से, खासकर युवाओं में मायोकार्डिटिस (हृदय की पेशी में सूजन) जैसी समस्या का खतरा सामने आया है। इस तकनीक के एक आविष्कारक ने भी बड़े पैमाने पर इसके इस्तेमाल को लेकर आगाह किया है।

कोविड-19 महामारी के वैश्विक प्रतिक्रिया अनौपचारिक रही है; जटिल मुद्दों के लिए कई सोचने की टोपियां चाहिए

कोविड-19 महामारी से निपटने की वैश्विक रणनीति पर कुछ सवाल खड़े होते हैं। दहशत, भय और अविवेकी व्यवहार ने लालच को इस महामारी का फायदा उठाने का मौका दे दिया। इससे हमें यह सीखने की जरूरत है कि भविष्य में ऐसी स्थितियों से कैसे बेहतर तरीके से निपटा जा सकता है।

पहली नज़र में, वैश्विक प्रतिक्रिया थोड़ी अधूरी सी लगती है। लॉकडाउन, स्कूल बंद करना और शारीरिक दूरी बनाए रखना जैसे कदम शायद एक अमेरिकी कंप्यूटर वैज्ञानिक की 14 साल की बेटी के स्कूल प्रोजेक्ट पर आधारित थे। इसमें ये भूल हो गई कि मनुष्य निष्क्रिय कंप्यूटर इकाई नहीं बल्कि सामाजिक प्राणी हैं। इसी तरह, मास्क की प्रभावशीलता का अध्ययन पहले प्रयोगशाला स्थितियों में हम्सटरों पर किया गया था। ये भूल गया कि इंसान प्रयोगशाला के अंदर या बाहर, हम्सटरों की तरह व्यवहार नहीं करते! बाद में डेन्मार्क और बांग्लादेश में मास्क की प्रभावशीलता पर बड़े पैमाने पर परीक्षण किए गए (गौरतलब है कि इस बार इंसानों पर!) जिनसे पता चला कि मास्क का प्रभाव न के बराबर या बहुत कम है।

कोविड-19 उतना सरल नहीं है जितना दिखता है। यूं कहें तो एक सीधी सी समस्या को हमने उलझाकर जटिल बना दिया।

एडवर्ड डे बोनो, एक मशहूर मनोचिकित्सक और विचारक, का मानना था कि जटिल समस्याओं का हल निकालने के लिए "छह सोचने की टोपियां" नामक तकनीक बहुत कारगर हो सकती है। इस तकनीक में जानकारी, आशावाद, निराशा और भावनाओं के पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर समाधान खोजने का प्रयास किया जाता है। साथ ही रचनात्मक हल ढूंढने और पूरी स्थिति को व्यापक नजरिए से देखने में भी यह मददगार है।

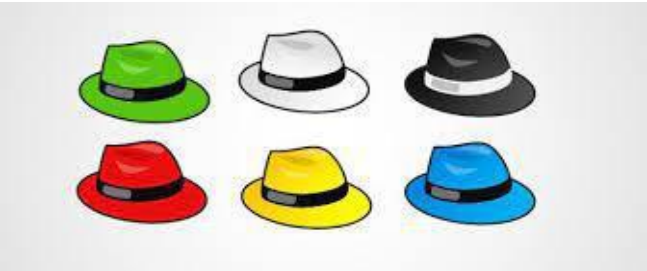

"सोचने की टोपी" एक प्रतीकात्मक तरीका है यह समझने का कि हमें अपने विचारों से अटका नहीं रहना चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे टोपियां बदली जा सकती हैं। एडवर्ड डे बोनो ने प्रस्ताव दिया कि हर एक टोपी को एक रंग दिया जाए, जो मानवीय विचारों और भावनाओं के पूरे दायरे को समेट ले। ये रंग हैं: सफेद, लाल, पीला, काला, हरा और नीला।

"सफेद टोपी": यह ठोस तथ्यों और आंकड़ों का प्रतिनिधित्व करती है, जिन पर निर्भर होकर ठोस फैसले लिए जाते हैं।

"लाल टोपी": यह भावनाओं को समझने के कौशल की मांग करती है, जैसे भय, आशा, विश्वास, नजरिया और आस्था। ये भावनाएं यथार्थवादी या अयथार्थवादी हो सकती हैं।

"पीली टोपी": सूरज की तरह चमकती हुई यह टोपी आशावाद का प्रतीक है, जो तथ्यों पर आधारित हो भी सकती है और नहीं भी।

"काली टोपी": "शैतान का वकील" बनकर यह सावधानी बरतने और किसी भी नीति के नकारात्मक पहलुओं पर विचार करने का आग्रह करती है।

"हरी टोपी": नई वृद्धि का प्रतीक, यह टोपी नई और इनोवेटिव समाधानों पर जोर देती है।

"नीली टोपी": बड़ी तस्वीर को देखते हुए, यह सुनिश्चित करती है कि सभी "टोपियों" का इस्तेमाल किया जाए।

कोविड महामारी के दौरान, एक रंग की टोपी पहने हुए कुछ धूर्त चरवाहे जैसे लोग मुद्दों को अपने कब्जे में लेते गए और अलग टोपी पहनने वालों को दबाते रहे। ज्यादातर देशों में, भोली जनता, जो कि इतने संकट से सुन्न पड़ चुकी थी कि साफ तौर से सोच भी नहीं पा रही थी, उन्हें जो भी टोपी थमाई गई, उसे स्वीकार कर लेती थी। इनमें से ज्यादातर लाल टोपी थीं, यानी भावनाओं की टोपी - डर, दहशत और चिंता। इस तरह से लाचार होकर जनता उन लालची लोगों के लिए खुला शिकारगाह बन गई, जो लालच की टोपी पहने हुए थे, चाहे वो राजनेता हों, बाजार की ताकतें हों या फिर मौकापरस्त वैज्ञानिक।

चलिए छह सोचने की टोपियों का इस्तेमाल करके इस महामारी का सामना करते हैं। सबसे पहले, आते हैं सफेद टोपी पर, यानी ठोस आंकड़ों पर गौर फर्माते हैं। हालिया आंकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि मृत्यु दर के शुरुआती अनुमान काफी बढ़ा-चढ़ाकर बताए गए थे। पश्चिमी देशों में जिन लोगों की मृत्यु हुई, उनमें से ज्यादातर 80 साल से अधिक उम्र के थे और उन्हें पहले से ही अन्य बीमारियाँ भी थीं। रिपोर्ट की गई कोविड-19 मौतों में से केवल 6% ही सीधे तौर पर सिर्फ इस वायरस के कारण हुईं। बाद के शोध बताते हैं कि इस वायरस की मारक क्षमता बहुत कम है। स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं द्वारा तैयार की गई तालिका में उम्र के हिसाब से मरीजों के बचने की दर को दर्शाया गया है।

कोविड के बाद आयु के अनुसार जीवित रहने की दर

स्रोत https://opentheword.org/2021/08/30/survival-rates- after-contracting-covidi

आयु वर्षों में	जीवित रहने की दर
0-19	**99.9973%**
20-29	**99.986%**
30-39	**99.969%**

40-49	**99.918%**
50-59	**99.73%**
60-69	**99.41%**
70+	**97.6%**
70 + (घर में देखभाल)	**94.5%**

सफेद टोपी (ठोस आंकड़ों) पर गौर करें तो ये साफ़ हो जाता है कि कोविड-19 से बच्चों और युवाओं के मरने का खतरा न के बराबर है। ये नीति निर्माण के लिए काफी अहम है। हाल ही में 'टॉक्सिकोलॉजी रिपोर्ट्स' नाम की पत्रिका में प्रकाशित एक शोधपत्र "'बच्चों को कोविड-19 का टीका क्यों लगा रहे हैं?'" इसी नतीजे पर पहुंचता है। शोध के मुताबिक बच्चों में कोविड-19 से मौत का खतरा न के बराबर है, जबकि टीका लगने के बाद होने वाली मौतों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। सफेद टोपी (ठोस आंकड़ों) ने जहां हमें राहत की सांस दी, वहीं "काली टोपी" (आशंकावादी सोच) कुछ गंभीर सवाल खड़े करती है। शोधपत्र में टीके के स्पाइक प्रोटीन को लेकर विशेष चिंता जताई गई है। ये प्रोटीन शरीर के विभिन्न अंगों में पाए गए हैं और इसके दीर्घकालिक प्रभावों को लेकर अभी भी अनिश्चितता बनी हुई है। ये चिंताएं इसलिए भी गंभीर हैं क्योंकि इंग्लैंड और वेल्स के आंकड़ों के अनुसार (01 मई 2021 से 17 सितंबर तक) 15-19 साल के पुरुषों में मृत्यु दर में 16% से 47% तक की वृद्धि देखी गई है, जो इसी आयु वर्ग में टीकाकरण अभियान शुरू होने के समय से मेल खाती है। (https://www.hartgroup.org/recent-deaths-in-young-people-in england-and-wales/) ऐसा लगता है कि "काली टोपी" और भी काली होती जा रही है।

अब चलिए आगे बढ़ते हैं "लाल टोपी" की तरफ, यानी भावनाओं की दुनिया में। इस महामारी ने लोगों के मन में "लाल टोपी" पहना दी, जिससे डर और दहशत का माहौल बन गया। माता-पिता को अपने बच्चों के लिए चिंता होने लगी कि वे कहीं इस वायरस की चपेट में न आ जाएं। वहीं दूसरी तरफ, कुछ लोगों ने इस स्थिति का फायदा उठाते हुए लालची बन गए (ये भी एक तरह की "लाल टोपी" ही है) और बच्चों के व्यापक टीकाकरण को बढ़ावा दिया। इन दोनों ही तरह की "लाल टोपियों" - दहशत और लालच - पर "सफेद टोपी" (ठोस आंकड़े) और "काली टोपी" (आशंकावादी सोच) को लगाम लगाना जरूरी है। तभी हम सही फैसले ले पाएंगे।

अब आते हैं "पीली टोपी" पर, यानी आशावाद और धारणाओं की दुनिया पर। जो लोग "सफेद टोपी" यानी आंकड़ों का गहन अध्ययन करके जोखिम और लाभ का आकलन करते हैं, उनके लिए कम मृत्यु दर आशावाद का कारण है। लेकिन जो लोग बिना आंकड़ों को देखे प्रचार के झांसे में आ जाते हैं, उनके लिए टीके में आँख मूंदकर भरोसा करना आशावाद का रूप ले लेता है। दुर्भाग्य से, ऐसे लोगों की संख्या ज्यादा है, जो स्वार्थी लोगों के लिए खुला शिकारगाह बन जाते हैं। "विशेषज्ञों" की कहानियों ने ही तो यही धारणा बनाई कि टीका मानव जाति का उद्धारक है। टीके के इंतजार में लगे लंबे लॉकडाउन और उससे जुड़े दुखों को भी सही ठहराया गया। वायरस की घातकता के आंकड़ों को लेकर भी गलतफहमी बनी रही। भारत में दूसरी लहर के दौरान इसका परिणाम एक तरह का "चिकित्सीय भगदड़" के रूप में सामने आया। हल्के लक्षण या बिना लक्षण वाले ज्यादातर RT-PCR पॉजिटिव लोग अस्पतालों की ओर दौड़ पड़े, जिससे स्वास्थ्य सेवाएं चरमरा गईं और गंभीर मरीजों को न तो बिस्तर मिल पाए, न ही ऑक्सीजन। अगर शुरू से ही "सफेद टोपी" का इस्तेमाल समझदारी से किया जाता, तो शायद इस "भगदड़" को रोका जा सकता था और कई जानें बचाई जा सकती थीं।

कई देशों में टीकाकरण अभियान के बाद अब हमारे पास "सफेद टोपी" यानी ठोस आंकड़ों पर आधारित सोच के लिए और भी ज्यादा जानकारी मौजूद है। इसी का इस्तेमाल नीति निर्माण में करना चाहिए। यूरोपियन जर्नल ऑफ एपीडेमियोलॉजी में प्रकाशित एक शोधपत्र काफी विचारणीय है। 30 सितंबर 2021 को ऑनलाइन प्रकाशित इस अध्ययन का शीर्षक है, "'कोविड-19 के मामलों में वृद्धि का संबंध 68 देशों और अमेरिका की 2947 काउंटियों में टीकाकरण के स्तर से नहीं है।'" इस शोध का निष्कर्ष है कि टीकों को दीनता और सम्मान के साथ पेश किया जाना चाहिए, लोगों को कलंकित (लाल टोपी का अत्यधिक प्रयोग) नहीं करना चाहिए। अध्ययन बताता है कि व्यापक टीकाकरण संक्रमण को रोकने में कारगर नहीं है। ये थोड़ी "काली टोपी" वाली सोच है।

चलिए अब पीली टोपी (आशावाद) पहनते हैं, खासकर हमारे देश के संदर्भ में। इजरायल सहित अन्य देशों के अध्ययनों ने पाया है कि प्राकृतिक संक्रमण से प्राप्त प्रतिरक्षा टीकों की तुलना में 13 गुना अधिक मजबूत होती है। यह सफेद टोपी यानी ठोस आंकड़ों पर आधारित महत्वपूर्ण जानकारी है। आईसीएमआर द्वारा जून 2021 में किए गए सीरोसर्वेक्षण में पता चला था कि लगभग 70% भारतीय और काफी संख्या में बच्चे संक्रमण से उबर चुके थे और उनमें प्राकृतिक प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो गई थी। किसी भी मानक के अनुसार, यह जनसंख्या में हर्ड इम्युनिटी के बराबर है। इसलिए, बड़े पैमाने पर टीकाकरण अभियान के बिना भी, भयावह तीसरी लहर की कोई संभावना नहीं थी।

कोविड महामारी के दौरान रचनात्मकता की हरी टोपी ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस टोपी ने न सिर्फ वैक्सीन विकास में नई टेक्नोलॉजी का रास्ता खोला बल्कि भविष्य में दूसरी बीमारियों के लिए भी तेजी से वैक्सीन बनाने की संभावना जगाई। लेकिन किसी भी ताकत की तरह, हरी टोपी के उत्साह को भी बाकी पांच टोपियों के साथ संतुलन बनाना जरूरी है। सिर्फ इसलिए कि कोई टेक्नोलॉजी विकसित हो गई है, इसका अंधाधुंध इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। आंकड़ों (सफेद टोपी) से मिल रहे संकेत बताते हैं कि इसका नुकसान भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, एमआरएनए टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल करते हुए बनाए गए कुछ टीकों से युवाओं में मायोकार्डिटिस (हृदय की पेशी में सूजन) का खतरा सामने आया है। इसलिए जरूरी है कि उत्साह (पीली टोपी) के साथ सतर्कता (काली टोपी) और ठोस आंकड़ों (सफेद टोपी) का भी ध्यान रखा जाए।

अंत में आते हैं हरी टोपी पर, यानी व्यापक नजरिए पर। हरी टोपी का काम है कि वह सभी छह टोपियों (सोचने के तरीकों) के बीच संतुलन बिठाए। साथ ही परिस्थिति और क्षेत्र के अनुसार टोपियों को बदलने की भी लचीलापन रखे। किसी भी टोपी को हमारे सिर पर हमेशा के लिए नहीं अटक जाना चाहिए। अभी हरी टोपी की भूमिका ढेर सारी सफेद टोपियां (आंकड़े) और पीली टोपियां (आंकड़ों पर आधारित आशावाद) बांटने की है। साथ ही कुछ काली टोपियां (आशंकाएं) भी जरूरी हैं, जो टीकों की प्रभावशीलता/नुकसान से जुड़ी होंगी (ये आंकड़ों पर आधारित सफेद टोपी सोच से निकलेंगी)। निश्चित रूप से, हरी टोपी की सबसे बड़ी भूमिका जनता के बीच से लाल टोपियां हटाने की है। ये लाल टोपियां उन लोगों के सिर पर हैं जो अभी भी दहशत में हैं। साथ ही हरी टोपी को उन लालची लोगों से भी लाल टोपियां हटानी हैं, जिन्हें हम "स्वार्थी" कह सकते हैं। इन स्वार्थी लोगों में राजनेता, करियरवादी वैज्ञानिक और बाजार की ताकतें शामिल हैं।

मास्क की प्रभावकारिता पर विरोधाभासी दावे

मास्क कोरोनावायरस के प्रसार को रोकने में 80% प्रभावी है, सीडीसी कहता है। अन्य चिकित्सा अनुसंधान एक और साधारण प्रभावशीलता दिखाते हैं, 11% या बिल्कुल कोई प्रभाव नहीं है।

सामाजिक बातचीत में सत्य से अलग उदाहरण से "प्रो-सामाजिक झूठ" कभी-कभी एक कठिन स्थिति को निपटा सकते हैं। इसे विज्ञान से जोड़ने से इसकी प्रतिरोधक्षमता को लाना संभव है। और यदि परिपूर्ण वैज्ञानिक संस्थानों द्वारा अमल किया जाता है तो इन बातों से उनकी विश्वसनीयता और प्रतिष्ठा को हानि पहुंच सकती है।

महामारी के दौरान साक्ष्य आधारित अभ्यास से इस प्रकार की विचलन अधिकतर माननीय संस्थानों जैसे कि सेंटर फॉर डिजीज कंट्रोल (सीडीसी), अटलांटा, संयुक्त राज्य खाद्य और औषधि प्रशासन (एफडीए), और अन्यों की ओर से अत्यधिक बार आई। प्रसिद्ध संस्थानों से गलत सूचना, जो वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं, और सामान्य जनता द्वारा अंतिम

प्राधिकरण के रूप में स्वीकृत किए गए थे, वर्तमान और भविष्य की महामारियों पर घातक प्रभाव डाल सकती है। यह विज्ञान और वैज्ञानिक संस्थानों में सामान्य जनता के बीच विश्वास की अप्रत्याशित घटना कर सकती है, और साथ ही, अगर न कहें तो थोड़ी सी शर्मिंदगी का भी कारण बन सकती है, अभ्यासरत शोधकर्ताओं के बीच निराशा और मोहभ्रांति भी पैदा कर सकती है। इन भ्रामक संकेतों में अनुसंधान प्राथमिकताओं को गलत रास्ते पर धकेलने की भी क्षमता है।

अंग्रेजी कला और साहित्य में, शेक्सपियर या बार्ड के रूप में जाना जाता है, माना जाता है कि मेलोड्रामा का उपयोग करते हुए वह धोखे, लालच, और दुःख जैसे मानव अनुभव का पूरा प्रकार पकड़ लिया। जूलियस सीज़र में, उसकी एक प्रसिद्ध नाटक में, सीज़र के आख़िरी शब्द थे, '" एट टू, ब्रूट, थान फॉल सीज़र"' जो कि '"तू भी, ब्रूटस, फिर गिरेगा सीज़र"' का अनुवाद है, क्योंकि सीज़र के हत्यारे में उसका सबसे अच्छा और विश्वसनीय दोस्त ब्रूटस भी था।

भारतीय मुख्यधारा कला और संस्कृति भी फ़िल्मों के माध्यम से इस विशाल कैनवास को कैद करती है। एक क्लासिक हिंदी फ़िल्म में एक गीत मेडिकल साइंस की वर्तमान स्थिति को कैप्चर करता है। इस गाने में इस स्थिति के लिए कई अलेगोरियां हैं। उदाहरण के लिए, एक छंद है जो यह कहता है, '"मज़धार में नैय्या डोले, तो मांझी पार लगाए, मांझी जो नाव डूबोए उसे कौन बचाए..."' जिसका अनुवाद है, '"मध्यस्थिति में, जब नौका हिल रही हो, तब नाविक उसे डूबने से बचाता है, लेकिन जब नाविक खुद नाव को डुबो देता है, तो कौन उसे बचाएगा।"'

महामारी ने हमारी सार्वजनिक स्वास्थ्य और नियामक प्रणालियों की कमजोरियों को उजागर कर दिया है। वैश्विक रुझानों का सूचक माने जाने वाले अमेरिका में, महामारियों को नियंत्रित करने के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा और हस्तक्षेपों की सुरक्षा सुनिश्चित करने वालों द्वारा फैलाई गई गलत सूचना और कुकृत्य गंभीर चिंता का विषय हैं और मानवता के लिए खतरा हैं।

महामारी के दौरान, सीडीसी निदेशक ने ट्वीट किया कि मास्क नए कोरोनावायरस के प्रसार को 80% तक कम कर देते हैं। यह बयान, जो प्रमाण के खिलाफ है, सीडीसी निदेशक के मुख से आने से इस महान संस्थान की विश्वसनीयता को अत्यधिक हानि पहुंचाया। सीडीसी एटलांटा को सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रोटोकॉल में आखिरी बात कहा जाता था और यह अत्यंत अयोग्य बयान सार्वजनिक स्वास्थ्य पेशेवरों के सीडीसी में विश्वास को कमजोर करने की क्षमता रखता था। बाकी से कम सत्य से दूरी को मुख्य मत के अनुसार '"फेक न्यूज़"' कहा जाता है और सेंसर किया जाता है।

मास्क द्वारा सुरक्षा का वैज्ञानिक सबूत यह है कि कपड़े के मास्क वायरस के प्रसार को नहीं रोकते हैं और सर्जिकल मास्क बहुत ही कम सुरक्षा प्रदान करते हैं, लगभग 11% तक। एक डेनमार्कीय रैंडमाइज़्ड कंट्रोल्ड मास्क स्टडी ने सर्जिकल मास्क का उपयोग करने का कोई लाभ नहीं माना जबकि बांग्लादेश से एक बहुत बड़ी क्लस्टर रैंडमाइज़्ड मास्क स्टडी ने पाया कि कपड़े के मास्क कोई सुरक्षा नहीं देते हैं जबकि सर्जिकल मास्क ने केवल 11% तक प्रसार को कम किया।

ऐसी गलत सूचना खतरनाक साबित हो सकती है। मास्क की 80% प्रभावकारिता के गुमराहाने बयान से बहुत से लोगों को असली सुरक्षा के ख़्वाब में ले लिया जा सकता है। सुरक्षा को अधिक महत्व देने के चक्कर में, अधिकांश लोग अन्य सुरक्षित व्यवहारों को नज़रअंदाज़ कर सकते हैं, जैसे कि तीन 'सी' - बंद जगहों, भीड़, और क़रीबी संपर्क से बचें। यह विशेष रूप से बुढ़े और संक्रमित होने की संभावना ज्यादा होने वालों के लिए खतरनाक हो सकता है।

गलत तरीके से उपयोग की गई मास्क अत्यंत खतरनाक हो सकती है। गर्म और गीले मौसम में पसीना और लार मास्क को दो घंटे के भीतर गीला कर सकते हैं, जो कि अन्य पैथोजन और क़ब्ज़े के लिए आदर्श मिट्टी प्रदान कर सकता है, जो नए कोरोनावायरस से अधिक विषाणुला हो सकते हैं। एक अनुमान प्रस्तुत किया जा सकता है कि भारत के गर्म और गीले मौसम के दौरान दूसरी लहर में म्यूकोरमाइकोसिस या काले क़ब्ज़े की अधिक मामले शायद गलत तरीके से उपयोग की गई गंदी मास्क के कारण हो सकते हैं, साथ ही स्टेरॉयड्स के उपयोग और मधुमेह जैसे मौखिक कारणों के साथ। यह एक शोध के लिए विषय है जिसे कभी अन्वेषित नहीं किया गया। यह इस विश्वास के कारण हो

सकता है कि मास्क पवित्र और पवित्र माने जाते हैं, जैसा कि सीडीसी के निदेशक द्वारा उन्होंने सभी प्रमाण के ख़िलाफ़ बिना किसी प्रमाण के प्रचार किया था।

सीडीसी द्वारा एक और बेढंग और अव्यवसायिक क्रिया थी वैक्सीन से प्रेरित प्रतिरक्षा को प्राकृतिक संक्रमण से बचाव की प्रतिरक्षा से श्रेष्ठ बताने वाला प्रोपेगेंडा। इस काम का आधार एक अत्यधिक दोषपूर्ण अध्ययन पर आधारित था। इस अध्ययन में केवल 89 अप्रतिनिधित रोगियों पर अवलोकन हुआ था जो विभिन्न अस्पतालों में थे और इसे गंभीर शोधकर्ताओं ने कड़ी आलोचना की थी। दूसरी ओर, इजराइल और क्लीवलैंड क्लीनिक, यूएसए के अन्य अस्पतालों में बहुत बड़े सैंपल साइज़ पर वास्तविक दुनियावी अध्ययनों ने स्पष्ट रूप से स्वीकृत किया है कि प्राकृतिक संक्रमण के बाद प्रतिरक्षा कम से कम 13 गुना अधिक शक्तिशाली होती है तुलना में वैक्सीन से प्रेरित प्रतिरक्षा से। सीडीसी को बाद में अपने शब्दों का पालन करना पड़ा, जब घटनाओं ने झूठी कहानी को खत्म कर दिया, और यह स्वीकार करना पड़ा कि प्राकृतिक प्रतिरक्षा टीके से प्रेरित प्रतिरक्षा से बेहतर थी।

FDA भी कार्रवाई के अभाव में सहायक था, यदि अपराध नहीं। एक शोधात्मक लेखक ब्रिटिश मेडिकल जर्नल (BMJ) में एक जांची प्रार्थना के अनुसार, पीफाइजर वैक्सीन परीक्षण का एक केंद्र में भयानक अनियमितियां थीं। इस केंद्र के निदेशक ने वैक्सीन परीक्षण के दौरान गंभीर गुणवत्ता नियंत्रण की लापरवाही की रिपोर्ट की जैसे अनुशिक्षित टीकाकरणकर्ताओं, दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं का बुरा प्रबंधन, अनब्लेंड प्रतिभागी और अन्य चूकों की रिपोर्ट की थी। इस नियामक निकाय ने इन चूकों के बारे में सूचित होने पर भी कोई कार्रवाई नहीं ली। इसे और बुरा बनाने के लिए, इस गुप्तचरक को उसके नियोक्ताओं ने संक्षेप में नौकरी से निकाल दिया।

सीडीसी जैसे सम्मानित निकायों और एफडीए जैसे नियामक अधिकारियों द्वारा चूक और कमीशन के ऐसे कृत्य बार्ड की करुणा को प्रतिध्वनित करते हैं और क्लासिक संगीत गीत में सवाल किया गया है कि अगर नाविक खुद नाव को डुबोएगा तो हमें डूबने से कौन बचाएगा। "'एट तू सीडीसी, एट तू एफडीए, दैन फॉल साइंस!" या "'माझी जो नाव डुबोए उसे कौन बचाए..."

यदि ओमिक्रॉन दूसरा नया गेंद है, तो संभावना है कि यह ज्यादा नुकसान नहीं पहुंचाएगा क्योंकि पिच धीमी हो चुकी है

महामारी के क्रिकेट मैच की बात करें तो, अगर नया कोरोनावायरस वेरिएंट टेस्ट मैच की दूसरी नई गेंद होता, तो शायद ये ज्यादा नुकसान नहीं पहुंचा पाता। ऐसा इसलिए क्योंकि पिच (संक्रमण फैलाने की अनुकूलता) अब धीमी पड़ चुकी है और गेंदबाजी के लिए (नए संक्रमण की रफ्तार) घास (तेजी से फैलने की क्षमता) भी कम बची है।

कोविड -19 महामारी तो शुरू हुई थी एक सीमित ओवरों वाले क्रिकेट मैच की तरह, पर ये संकट इतना लंबा खिंच गया कि ये टेस्ट मैच का रूप ले चुका है। शुरुआत में ज्यादातर देशों में सिर्फ दो-तीन हफ्ते के लॉकडाउन का वादा किया गया था। ये लॉकडाउन ظाहिर में "संक्रमण-दर को कम करने" और "संक्रमण की जंजीर तोड़ने" के लिए था, ताकि हेल्थकेयर सिस्टम को मजबूत बनाया जा सके और उसे चरमराने से बचाया जा सके। ये छोटा माना जाने वाला उपाय ज्यादातर देशों में लंबे समय तक चलने वाली पाबंदियों में बदल गया। उम्मीद थी कि जल्द ही वैक्सीन आ जाएगी। मगर अब नोवेल कोरोनावायरस का नया वैरिएंट, "ओमिक्रॉन", दूसरी नई गेंद की तरह मैदान में आ खड़ा हुआ है और लगता है ये महामारी क्रिकेट का सबसे लंबा टेस्ट मैच बनने की धमकी दे रही है।

टेस्ट मैच की शुरुआत में "डेल्टा वेरिएंट" पहली नई गेंद की तरह था, तेज रफ्तार और खतरनाक स्विंग के साथ। इस पहली गेंद की वजह से दहशत का माहौल बन गया। बहुत सारे हल्के लक्षण या बिना लक्षण वाले मरीज भी अस्पतालों में दाखिल होने के लिए दौड़ पड़े, मानो "चिकित्सीय भगदड़" मच गई हो। इससे अस्पतालों में अफरातफरी का माहौल बन गया और जो मरीज वास्तव में गंभीर थे, उन्हें उचित इलाज नहीं मिल पाया। नतीजा ये हुआ कि मृत्यु दर काफी बढ़ गई, जिनमें से कुछ मौतों को शायद टाला जा सकता था, अगर जनस्वास्थ्य के सिद्धांतों के अनुसार महामारी का प्रबंधन किया गया होता।

दूसरे नए गेंद, ओमनिक्रोन वेरिएंट के आगमन के साथ एक ही रणनीतिक भूल को दोहराने से बचने के लिए, हमें न केवल नए गेंद पर ध्यान देना चाहिए बल्कि पिच पर भी ध्यान देना चाहिए जो नए गेंद की स्विंग और एनिप पर प्रभाव

डालती है। टेस्ट मैच के आखिरी दिनों में पिच घास और गति खो देती है। जनसंख्या भी प्राकृतिक संक्रमण से उपचार के बाद प्रधानतः उच्च स्तर की सामूहिक प्रतिरक्षा विकसित करती है जो एक अधिक मजबूत और दीर्घकालिक प्रतिरक्षा प्रदान करती है।

डार्विन का नियम, जो बताता है कि वायरस को जीवित रहने के लिए अनुकूलित होना चाहिए, वायरस द्वारा पालन किया जाता है। ये अनुकूलन प्रतिकृति, प्राकृतिक घटनाओं और यहां तक कि चयनात्मक दबाव में दोषों के परिणामस्वरूप होते हैं - जैसे कि एक महामारी के दौरान व्यापक टीकाकरण। सफल परजीविता के मार्गदर्शक सिद्धांत बताते हैं कि यह अनुकूलनशीलता वायरस और लोगों दोनों के लिए फायदेमंद है। प्राकृतिक चयन के नियम उन वायरस को बढ़ने की अनुमति देते हैं जो जीवित रहने के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं जबकि अन्य पीछे रह जाते हैं। वायरल या घातक स्ट्रेन एक मृत अंत संक्रमण का कारण बनते हैं क्योंकि वे व्यक्ति को मार देते हैं। कम विषाणु वाले उपभेद, जो मृत्यु के बजाय केवल लक्षण पैदा करते हैं, फैलते भी नहीं हैं क्योंकि मरीज़ खुद को अलग कर लेते हैं। नए कोरोनोवायरस के साथ, इनमें से हजारों परिवर्तन पहले ही हो चुके हैं, उनमें से अधिकांश पर किसी का ध्यान नहीं गया।

सबसे कम विषैले उत्परिवर्ती उपभेद वे होते हैं जो तेजी से फैलते हैं और बने रहते हैं, जिससे मेजबान में न्यूनतम या कोई लक्षण नहीं होता है और कोई मृत्यु नहीं होती है। इन हानिरहित उत्परिवर्तनों को ले जाने वाले व्यक्ति इन उत्परिवर्तनों को मिश्रित करेंगे और दूर-दूर तक फैलाएंगे। उच्च संक्रामकता और उच्च मृत्यु दर के बीच कोई स्पष्ट संबंध नहीं है। हाल ही में खोजा गया उत्परिवर्ती ओम्निक्रोन बिल्कुल डार्विन के प्राकृतिक चयन के नियम के अनुरूप है। अब तक की रिपोर्टों के आधार पर, यह बेहद मामूली स्व-सीमित लक्षणों का कारण बनता है।

इसलिए, उभरते हर नए वैरिएंट से घबराने से बचना महत्वपूर्ण है क्योंकि प्राकृतिक चयन अधिक सौम्य वैरिएंट का पक्ष लेता है। सीमाओं को बंद करना और लॉकडाउन और संगरोध लागू करना उन उपायों के उदाहरण हैं जो पहले, कम संक्रामक वेरिएंट के प्रसार को रोकने में विफल रहे हैं। इन त्रुटियों के कारण लोग भयभीत और चिंतित हो जाएंगे, जिसके परिणामस्वरूप चिकित्सा भगदड़ मच जाएगी जब असामान्य लक्षणों वाले व्यक्ति अस्पताल के बिस्तरों को रोक देंगे और चिकित्सा संसाधनों को समाप्त कर देंगे, जिससे अधिक गंभीर मामले गंभीर देखभाल से वंचित हो जाएंगे।

भारत की अधिकांश आबादी को प्राकृतिक संक्रमण से रोग प्रतिरोधक क्षमता प्राप्त हो चुकी है, जो हमेशा टीका से बनने वाली प्रतिरोधक क्षमता से ज्यादा मजबूत और लंबे समय तक चलने वाली होती है. ऐसा इसलिए है क्योंकि शरीर का रोग प्रतिरोधक तंत्र, स्मृति कोशिकाएं और टी कोशिकाएं पूरे वायरस के संपर्क में 10-15 दिनों तक आती हैं. जबकि टीके से बनने वाली प्रतिरोधक क्षमता सिर्फ स्पाइक प्रोटीन को लक्षित करती है (जिसमें 30 म्यूटेशन हो चुके हैं). इसलिए ओमिक्रोन और उसके बाद आने वाले रूपांतर देश में कोई बड़ी समस्या खड़ी नहीं कर पाएंगे. वहीं दूसरी तरफ, इन रूपों में संक्रमण फैलाने की क्षमता तो ज्यादा है लेकिन मारक क्षमता बहुत कम है. इससे जनसंख्या स्तर पर रोग प्रतिरोधक क्षमता और भी बढ़ सकती है, जो महामारी पर पूरी तरह से लगाम लगा देगा. दरअसल, भारत में महामारी अब स्थ endemic अवस्था में पहुँच चुकी है और ये रूपांतर इसे पूरी तरह से खत्म करने में मदद कर सकते हैं.

इतिहास बताता है कि प्राकृतिक संक्रमण कई दशकों बाद भी बिना टीकाकरण के लंबे समय तक चलने वाली रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करता है। ऐसा ही 2009 के स्वाइन फ्लू (HINI) महामारी के दौरान हुआ था, जब 60 साल से अधिक उम्र के लोगों पर इस बीमारी का प्रभाव कम पड़ा था, जबकि युवा वर्ग ज्यादा प्रभावित हुआ था।

इसी तरह कोरोना वायरस के मामले में भी देखा गया है कि पिछले SARS संक्रमण से हुई रोग प्रतिरोधक क्षमता, नए कोरोना वायरस के लिए भी कुछ हद तक काम करती है। प्रकाशित शोध के अनुसार, 17 साल पहले SARS-CoV-1 के संपर्क में आने वाले लोगों में, SARS-CoV-2 के लिए मजबूत टी-कोशिका रोग प्रतिरोधक क्षमता पाई गई है।

सभी बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए, ओमिक्रोन और उसके बाद आने वाले रूपांतर जनसंख्या स्तर पर वही चीज़ हासिल कर सकते हैं, जो किसी भी आदर्श टीके का लक्ष्य होता है - यानी मृत्यु या अस्पताल में भर्ती हुए बिना सामूहिक

रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाना. इतने कम घातक रूपों के पीछे भारी संसाधन लगाना, जुकाम को खदेड़ने जैसा है. सिर्फ मध्यम और गंभीर मामलों पर ही नज़र रखी जानी चाहिए, और बिना लक्षण वाले मामलों को छोड़ देना चाहिए.

अंतिम लेकिन महत्वपूर्ण बात, निहित स्वार्थ रखने वाले हितधारकों को भी "पृथक-वास" की जरूरत है, जिनमें दवा उद्योग, निजी क्षेत्र, राजनेता और कैरियर वैज्ञानिक शामिल हैं. इससे सच्चे वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा मिलेगा और मानवता वापस विवेकपूर्ण रास्ते पर लौट सकेगी. ऐसा न करने पर हम सिर्फ दिखावे के लिए जीरो कोविड मामलों के पीछे भागते रहेंगे, भले ही नए रूपों से कोई मौत न हो. इससे भारी आर्थिक और सामाजिक नुकसान होंगे.

कोविड-19 चेस खेल: क्या हम बोर्ड पर सभी टुकड़े और उनके संयोजनों को देख रहे हैं?

एक तरफ के क्लिनिशियन (चिकित्सक) हर बार सिर्फ एक मोहरा देखते हैं, वहीं दूसरी तरफ एपीडेमियोलॉजिस्ट (महामारी विशेषज्ञ) सभी मोहरों को और उनके संयोजन को देखते हैं। यही सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा से जुड़ने के लिए महत्वपूर्ण है।

एपीडेमियोलॉजी को बढ़ावा देने का मेरा एक पसंदीदा तरीका इस अद्भुत क्षेत्र की तुलना शतरंज के खेल से करना है। जहां व्यक्तिगत राष्ट्रीयता का इलाज करने वाला क्लिनिशियन बीमारी की समस्या को दर्शाया गया है, वहीं एक एपडेमियोलॉजिस्ट बड़ी तस्वीर देखी गई है।

शतरंज की बात करें तो, एक नौसिखिया खिलाड़ी रानी के मोहरों को पढ़ता है और बाकी मोहरों को मंजूरी दे देता है। वहीं, एक खिलाड़ी अच्छा सभी मोहरों को देखता है, साथ ही यह भी देखता है कि वे एक-दूसरे के साथ मिलकर कैसे काम करते हैं। जो भी नया खिलाड़ी सिर्फ रानी पर ध्यान केंद्रित करता है, वह अनुभवी खिलाड़ी आसानी से हार जाता है। शतरंज में जीतने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि आप अपने स्वयं के मोहरों के साथ-साथ प्रतिद्वंद्वियों के मोहरों और उनके सहयोगियों को भी देखें।

कोविड-19 वायरस पिछले दो सालों में शतरंज की बिसात पर सबसे अहम मोहरा रहा है। उसी तरह, कुछ तथाकथित विशेषज्ञ नौसिखिए खिलाड़ियों की तरह सिर्फ इसी मोहरे पर ध्यान केंद्रित किए हुए थे, मानो यह अकेला ही खेल का फैसला करेगा। उन्होंने बाकी मोहरों और उनके आपसी तालमेल को नजरअंदाज कर दिया। दरअसल, कोविड-19 महामारी का खेल विभिन्न कारकों के बीच चल रहा था, जिन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

पश्चिमी, एशियाई और अफ्रीकी देशों के नमूने से 03 मई 2020 और 12 दिसंबर 2021 को प्रति मिलियन जनसंख्या पर मृत्यु दर्शाने वाले डेटा पर एक त्वरित नज़र डालने से यह स्पष्ट हो जाएगा [तालिका 1 - 3]।

पश्चिमी देशों में आमतौर पर एशियाई और अफ्रीकी देशों की तुलना में स्वच्छता और साफ-सफाई की स्थिति बेहतर होती है, साथ ही वहां जनसंख्या घनत्व भी कम होता है. इसके बावजूद, महामारी के शुरुआती दौर में वहां भी काफी मौतें हुईं. वहीं दूसरी तरफ, ज्यादातर अफ्रीकी और दक्षिण एशियाई देशों में जनसंख्या घनत्व बहुत ज्यादा है और वहां की एक बड़ी आबादी झुग्गियों में रहती है, जहां "शारीरिक दूरी" और "बार-बार हाथ धोना" जैसे कोविड-19 के प्रसार को रोकने के उपायों का पालन करना मुश्किल है. साथ ही, इन देशों में टीकाकरण का दायरा भी पश्चिमी देशों की तुलना में बहुत कम है.

तालिका में शामिल लगभग सभी दक्षिण एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्र समान प्रवृत्ति प्रदर्शित करते हैं। महामारी के दौरान, बहुत कम टीकाकरण कवरेज वाले दक्षिण एशियाई और अफ्रीकी देशों की भीड़-भाड़ और अस्वच्छ आबादी में पश्चिमी देशों की तुलना में कई गुना अधिक कोविड-19 मौतें हुई हैं, जो बार-बार हाथ धोने और शारीरिक दूरी के साथ-साथ बहुत अधिक टीकाकरण कवरेज की सुविधा का आनंद लेते हैं।

तालिका **1.** कुछ पश्चिमी देशों में कोविड-**19** से मौतें

देश	मृत्यु/**IM** जनसंख्या **03** मई **2020**	मृत्यु/**IM** जनसंख्या **12** दिसंबर **2021**	औसत आयु (वर्ष)	अधिक वजन%	**% 12** दिसंबर **2021** तक पूरी तरह से टीकाकरण
यूएसए	204	2450	38.1	67.9	60.6
स्पेन	540	1889	42.5	61.6	79.6
इटली	475	2234	45.5	58.5	74.3
फ्रांस	379	1838	41.4	59.5	71
यूके	414	2140	40.5	63.7	69.47
जर्मनी	81	1262	47.1	56.8	69.5
ब्राज़िल	35	2873	42.4	57.3	65.6
स्वीडन	265	1488	41.2	56.4	70.17

बेलोरूस	10	557	40	59.4	30.5

तालिका **2.** कुछ एशियाई देशों में कोविड-**19** से मौतें

देश	मृत्यु/**IM** जनसंख्या **03** मई **2020**	मृत्यु/**IM** जनसंख्या **12** दिसंबर **2021**	औसत आयु (वर्ष)	अधिक वजन%	**% 12** दिसंबर **2021** तक पूरी तरह से टीकाकरण
भारत	1.0	340	27.9	19.7	36.37
पाकिस्तान	2	127	23.8	28.4	25.41
अफ़ग़ानिस्तान	2	182	18.8	23	9.27
श्रीलंका	0.3	677	32.8	23.3	63.47
बांग्लादेश		177	26.72	20	25.31
मालदीव	2	464	28.2	30.6	62.5
नेपाल	Nil	386	24.1	21	29.9
जापान	3.86	146	48.4	24.6	77.8

तालिका 3. कुछ अफ़्रीकी देशों में कोविड-19 से मौतें

देश	मृत्यु/**IM** जनसंख्या **03** मई **2020**	मृत्यु/**IM** जनसंख्या **12** दिसंबर **2021**	औसत आयु (वर्ष)	अधिक वजन%	**% 12** दिसंबर **2021** तक पूरी तरह से टीकाकरण
नाइजीरिया	0.4	14	18.4	28.9	1.9

इथियोपिया	0.03	57	17.9	20.9	1.32
मिस्र	4	200	23.9	63.5	14.41
डीआर कांगो	0.4	12	28.1	25.3	0.18
तंजानिया	0.3	12	17.7	26.0	1.51
दक्षिण अफ्रीका	2	1492	27.1	53.8	29.36
केन्या	0.4	96	19.7	25.5	5.98
युगांडा	Nil	68	15.8	22.4	2.87

हम क्या नज़रअंदाज़ कर रहे थे? हमने इस बात पर ज़ोर क्यों दिया कि सभी के लिए एक ही आकार उपयुक्त है? जाहिर है, शतरंज की बिसात के काले और सफेद मोहरों में काफी अंतर था। आइए बोर्ड पर बचे हुए टुकड़ों की जाँच करें। तालिकाएँ दर्शाती हैं कि, एशियाई और अफ़्रीकी देशों की तुलना में, पश्चिमी देशों में औसत आयु और मोटापे की दर बहुत अधिक है। कोविड-19 से मरने का खतरा अधिक उम्र से जुड़ा हुआ है। फेफड़ों की कार्यप्रणाली को ख़राब करने के अलावा, मोटापा मधुमेह और उच्च रक्तचाप सहित अन्य सह-रुग्णताओं के लिए एक प्रॉक्सी मार्कर के रूप में भी कार्य करता है, जो कोविड -19 संक्रमण के प्रभावों को खराब करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मोटापे की घटनाओं में थोड़ी सी भी वृद्धि होने पर कोविड-19 से मृत्यु दर बढ़ जाती है। मिस्र और दक्षिण अफ्रीका में मोटापे की दर अन्य अफ्रीकी देशों की तुलना में अधिक है, और उनमें कोविड-19 मृत्यु दर भी अधिक है - हालांकि पश्चिमी देशों की तुलना में बहुत कम है। ब्राज़ील और जापान के अनुभव इस बारे में भी कुछ अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं कि क्या दो कारकों- मोटापा या उम्र- में से कोविड-19 से संबंधित मृत्यु का जोखिम अधिक है। जापान की औसत आयु अधिकांश पश्चिमी देशों की तुलना में अधिक है। बहरहाल, इस कमी का मुकाबला पश्चिम की तुलना में अधिक वजन वाले लोगों के कम प्रसार से होता है। इसके विपरीत, ब्राज़ील में युवा आबादी है लेकिन अधिक वजन वाले व्यक्तियों का प्रतिशत अधिक है। अधिक उम्र के बावजूद जापान में ब्राजील और अधिकांश पश्चिमी देशों की तुलना में बहुत कम कोविड-19 मौतें हुई हैं, जिससे पता चलता है कि मोटापा कोविड-19 के प्रतिकूल परिणामों के लिए एक महत्वपूर्ण जोखिम कारक है।

कुछ लोगों का यह भी सुझाव है कि अतीत में अन्य कोरोनावायरस से संक्रमित होने से, संभवतः अधिक भीड़-भाड़ वाली रहने की स्थिति में, कोविड-19 के खिलाफ क्रॉस इम्युनिटी मिल सकती है - इसकी पुष्टि उचित अध्ययनों द्वारा की जानी चाहिए।

तालिकाओं में डेटा पर एक नज़र डालने से पता चलता है कि पूरी तरह से टीका लगाई गई आबादी का प्रतिशत भी देश स्तर पर कोविड-19 से होने वाली मृत्यु दर से संबंधित नहीं है। यह चिंता का विषय होना चाहिए क्योंकि दुनिया एकजुट होकर भारी लागत पर सार्वभौमिक सामूहिक टीकाकरण के लक्ष्य का पीछा कर रही है।

यह संभव है कि कम आयु की आबादी, कम वजन वाले लोगों की कम व्यापकता और अतीत में अन्य कोरोनावायरस से संक्रमण (संभवतः कमज़ोर मोहरों की तरह) मिलकर शतरंज की बिसात के काले हिस्से पर कोविड-19 के प्रकोप को रोकने में भूमिका निभा रहे हैं, और टीकाकरण जैसे अन्य कठोर और अक्सर दंडात्मक उपायों का पहले से लागू

किया जाना बहुत मामूली प्रभाव डाल सकता है। हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं द्वारा किया गया और यूरोपियन जर्नल ऑफ एपिडेमियोलॉजी में प्रकाशित एक अध्ययन भी चिंताजनक है। यह शोधपत्र बताता है कि 68 देशों और 2947 अमेरिकी काउंटियों में कोविड-19 की घटनाओं पर सामूहिक टीकाकरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

सारांश यह है कि, वर्तमान और भविष्य की महामारियों से निपटने के लिए विभिन्न देशों और क्षेत्रों में सभी कारकों और उनके संयोजनों को देखते हुए एक महामारी विज्ञान संबंधी दृष्टिकोण की आवश्यकता है।